फोकस इण्डिया
प्रकाशन
जुलाई, 2015

जलवायु परिवर्तन और कृषि संकट

कृषि-पारिस्थितिकी

एक उपाय

सहयोग
रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफटुंग,
दक्षिण एशिया

जलवायु परिवर्तन और कृषि संकट

कृषि-पारिस्थितिकी

एक उपाय

FOCUS ON THE GLOBAL SOUTH

जलवायु परिवर्तन और कृषि संकट : कृषि–पारिस्थितिकी एक उपाय

लेखक : **पारूल लक्ष्मी थापा**

प्रकाशन : **जुलाई 2015**

प्रकाशक : **फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ**
इस पुस्तक की प्रतियां पाने के लिए संपर्क करें
33–डी, तीसरी मंजिल, विजय मण्डल एंक्लेव
डीडीए एसएफएस फलैट्स, कालू सराय, हौज खास
नई दिल्ली 110016
टेलिफोन : +91-11-26563588; 41049021
www.focusweb.org

सहयोग से : **रोज़ा लक्ज़मबर्ग स्टिफटुंग, साउथ एशिया**
सेंटर फॉर इंटरनेशनल कॉऑपरेशन
सी–15, दूसरी मंजिल, सफदरजंग डेवेलपमेंट एरिया मार्केट
नई दिल्ली 110016
www.rosalux-southasia.org

"Sponsored by the Rosa Luxemburg Foundation e.V. with funds of the Federal Ministry for Economic Cooperation and Development of the Federal Republic of Germany."

"Gefördert durch die Rosa-Luxemburg-Stiftung e.V. aus Mitteln des Bundesministerium für wirtschaftliche Zusammenarbeit und Entwicklung der Bundesrepublik Deutschland"

चित्र : लेखक य्यदि किसी का नाम न हो तोह

डिज़ाइन व मुद्रण : **पुलशॉप,** 9810213737

इस पुस्तिका के विषय का स्वेक्षा से पुर्नमुद्रण व छापने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है पर हमे ाा स्त्रोत का उल्लेख किया जाय। फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ आभारी होगा अगर जहां भी इस पुस्तिका की सामग्री का उल्लेख किया गया है उसकी एक प्रति फोकस को भेजी जाए।

यह एक अभियान प्रका ान है और निजी वितरण के लिए है।

विषय–सूची

प्राक्कथन 5

जलवायु परिवर्तन क्या है ? 9

जलवायु परिवर्तन कैसे होता है? 9

ग्रीनहाउस गैस (Greenhouse gas) 10

जलवायु परिवर्तन के कारण 11

हम अपने रोजाना के क्रिया कलाप में किस प्रकार जलवायु परिवर्तन को बढ़ाते हैं? 13

जलवायु परिवर्तन हमें कैसे प्रभावित करता है? 14

जलवायु परिवर्तन भारत को कैसे प्रभावित कर रहा है 15

जलवायु परिवर्तन समझौते : वैश्विक राजनीति 19

UNFCCC समझौते : खोखले वायदे ? 19

भारत का दृष्टिकोण : आर्थिक विकास बनाम उत्सर्जन में कटौती 20

आन्तरिक नीतियां और कार्य 21

क्लाइमेट स्मार्ट कृषि : स्मार्ट किसके लिए ? 21

भारत में जलवायु परिवर्तन और कृषि 24

जलवायु परिवर्तन से सबसे ज्यादा नुकसान कृषि को क्यों ? 24

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव 25

अनुकूलन और शमन (Adaptation and Mitigation) 30

कृषि–पारिस्थितिकी : जलवायु परिवर्तन संकट का एक टिकाइ उपाय 39

प्राक्कथन

वर्ष 2015 की षुरूआत में उत्तर भारत के किसानों को बड़े मु किल समय से गुजरना पड़ा। बेमौसम बरसात और ओला वृष्टि से कई राज्यों में रबी फसलों को भारी नुकसान पहुंचा। गेहूं, जौ, मक्का, दालें, तिलहन, जीरा इत्यादि फसलें पकने ही वाली थीं कि नष्ट हो गईं। फरवरी, मार्च और अप्रैल के महीनों में पहले भी थोड़ी बहुत वर्षा हुई है पर इस वर्ष भारी वर्षा और ओला वृष्टि से 182 लाख हेक्टेयर से भी अधिक क्षेत्र की खड़ी फसल तबाह हो गई जिसके कारण दे ा भर में कई किसान आत्महत्या करने के लिए मजबूर हो गए।

भारत के छोटे और सीमांत किसान अब इस बदलते मौसम के अनुकूल अपना जीवन और खेती को बदल रहे हैं। उदाहरण के तौर पर उन्होंने स्थानीय और दे ी बीज को चुना है जो कि जल्दी उगते हैं और सूखा व अत्यधिक पानी का प्रतिरोध करने में सक्षम हैं। बाढ़ से निपटने और सूखा के दौरान मिट्टी को नम रखने के लिए जल प्रबंधन के नए तरीके सामने आए हैं। ज्यादातर समय इन्होंने यह सब इतनी सरलता और सफलता से किया कि किसी का इस ओर ध्यान ही नहीं गया। इस साल ऐसे कई उदाहरण सामने आए जब इतने खराब मौसम में भी किसानों ने टिकाप्र खेती के तरीकों और दे ी बीज की मदद से अपने खेती को नुकसान होने से बचा लिया। राजस्थान के रेगिस्तान में बेमौसम बरसात और ओला वृष्टि ने 33 में से 26 जिलों की फसल को नष्ट कर दिया। इतने खराब परिस्थितियों के बावजूद भी रानीसर गांव, फलौदी तहसील, जोधपुर जिले, के कई किसान अपनी जीरा की फसल बचा पाए क्योंकि वे कृषि–पारिस्थितिकी के सिद्धांत पर खेती कर रहे थे। स्थानीय मीडिया के अनुसार ये किसान जैविक पद्धति, दे ी बीज और कृषि विविधता के सिद्धांतों के आधार पर अपनी खेती कर रहे थे। इसी प्रकार बरेली, उत्तर प्रदे ा के तिघरा गांव के रहने वाले हैं, अनिल साहनी। इन्होंने एक स्थानीय बासमती धान की नई किस्म भी तैयार की है। मार्च में हुई भारी वर्षा से इनकी फसल को कोई नुकसान नहीं हुआ क्योंकि वो अपने दे ी बीज और पारम्परिक पद्धति से खेती कर रहे थे। इन्होंने अपने खेत में कभी भी किसी रासायनिक खाद या कीटना क का इस्तेमाल नहीं किया। पंजाब में जैविक खेती करने वाले कई किसान टिकाप्र खेती के तरीके अपनाकर अपनी गेहूं की फसल बचा पाए। ऐसा इसलिए हो पाया क्योंकि ये फसल हरित क्रांति के तरीकों (जिसमें भारी रसायन का इस्तेमाल होता है) से कहीं ज्यादा दबाव झेलने में सक्षम है। एक तरफ जहां जलवायु परिवर्तन से कृषि उत्पादन में भारी गिरावट आ रही है वहीं इस प्रकार के किसान बड़ी सूझ–बूझ से अपने पारम्परिक ज्ञान के आधार पर जैविक पलवार (mulching) और बहु–फसल (multi-cropping), दे ी बीज संरक्षण और कृषि–विविधता जैसी पद्धतियों को अपना कर अपनी खेती को बदलते समय के अनुसार ढ़ाल रहे हैं।

आज हमारे पास पर्याप्त जानकारी और साक्ष्य हैं कि जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में टिकाप्र खेती में अनुकूलन और षमन की बेहतरीन क्षमता है। यह ग्रीनहाउस गैस के उत्सर्जन में महत्वपूर्ण कटौती करने में सक्षम है। टिकाप्र खेती में जीव म ईंधन आधारित सामग्री का न्यूनतम इस्तेमाल होता है। हरित क्रांति पर आधारित खेती की तुलना में इसके कार्बन पदचिन्ह[1] (carbon footprint) बेहतर हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि जैविक पद्धतियों की तुलना में कृषि के नए तरीकों में ज्यादा प्र र्जा की खपत होती है। आधुनिक तरीके प्र र्जा सघन

[1] किसी एक संस्था, व्यक्ति या उत्पाद द्वारा कितना कार्बन उत्सर्जन किया गया

खाद, रसायन और संकेंद्रित भोजन (concentrated feed) पर आधारित होते हैं। जैविक किसान ऐसे तरीकों से दूर रहते हैं। टिकाप्र खेती से बेहतर कार्बन पृथक्करण (carbon sequestration) मिट्टी में होता है। इस प्रकार की खेती जलवायु द्वारा उत्पन्न संकट को कम करने में सक्षम है। किसान को केन्द्र में रखकर, उनके ज्ञान को प्राथमिकता देकर और मिट्टी की स्थिरता के द्वारा सूखा और भारी वर्षा से निपटा जा सकता है। टिकाप्र खेती कीट और रोगों की घटनाओं से भी निपट पाने में सक्षम होते हैं। अपनी खेती के तरीकों और पद्धतियों को टिकाप्र खेती की ओर बदलकर ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने का हमारे पास महत्वपूर्ण अवसर है। टिकाप्र खेती के कई रूप हैं – जैसे जैविक खेती, प्राकृतिक खेती, शून्य बजट खेती, पारिस्थितिकीय खेती इत्यादि। इन सारे तरीकों में प्राकृतिक रूप से उपलब्ध सामग्री का इस्तेमाल किया जाता है और विभिन्न प्राकृतिक प्रक्रियाओं का समावेश किया जाता है, जैसे पोशण पुनः चक्रण (nutrient recycling), नाईट्रोजन योगिकीकरण (nitrogen fixation), मिट्टी पुनरोद्धार (soil regeneration), कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं का इस्तेमाल, जल संरक्षण, मिट्टी संरक्षण, मिट्टी की उर्वरता पुनःस्थापन, कृषि जैव विविधता और हानिकारक खाद और कीटनाशक का न्यूनतम प्रयोग, इत्यादि। भारत सरकार को ग्रीनहाउस गैस के सघन इस्तेमाल वाली खेती से हो रहे बुरे प्रभाव को स्वीकार करने से पीछे नहीं हटना चाहिए जिसे वह खुद प्रोत्साहित कर रही है। इसके बदले सरकार को टिकाप्र खेती को बढ़ावा देना चाहिए।

परन्तु आज हम देख रहे हैं कि भारत में कार्बन सघन कृषि तकनीकों का प्रचार और प्रसार बड़ी तेजी से किया जा रहा है। मौजूदा कृषि व्यवस्था में ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने की सम्भावनाएं बहुत कम है। यह प्रऊर्जा सघन औद्योगिक कृषि व्यवस्था है जिसे अत्यधिक मात्रा में रसायन, कीटनाशक, तृणनाशक (herbicide), खाद, सघन–जल उपयोग, बड़े पैमाने पर परिवहन, भण्डारण, वितरण, इत्यादि की जरूरत पड़ती है। इन सभी का जलवायु परिवर्तन में बड़ा योगदान है। औद्योगिक खेती और खाद्य व्यवस्था में जैव विविधता, मिट्टी, पोषण, स्थानीय खाद्य व्यवस्था इत्यादि नष्ट हो जाते हैं। यह विश्व के कम से कम 40 प्रतिशत ग्रीनहाउस गैस के उत्सर्जन के लिए जिम्मेदार है।

हमें ऐसे अनेक उदाहरण मिल जाएंगे जब जलवायु परिवर्तन और खाद्य असुरक्षा से निपटने के नाम पर बड़ी कम्पनियों ने अपने फायदे के लिए झूठे उपाय प्रस्तुत किए। उदाहरण के तौर पर अनुवंशिक अभियांत्रिकी (जिनेटिक इंजीनियरिंग) द्वारा तैयार की गई सूखा प्रतिरोधी फसलें, औद्योगिक जैव ईंधन (industrial agro-fuels), बड़े स्तर पर भू–अभियांत्रिकी प्रोजेक्ट, कृत्रिम जीव विज्ञान (synthetic biology), अति सूक्ष्म प्रौद्योगिकी (nano technology) इत्यादि। ये सभी चीजें बड़े पैमाने पर एक–फसली (mono cropping), हाईटेक पूंजी निवेश और रासायनिक आगत (inputs) व्यवस्था पर आधारित है जिसमें पूंजी और केन्द्रीकृत नियंत्रण की जरूरत पड़ती है।

पर इनमें से कोई भी 'समाधान' कारगर नहीं है क्योंकि ये सब एकमात्र सार्थक सामाधान के विपरीत कार्य करते हैं : बड़ी कम्पनियों द्वारा संचालित वैश्विक औद्योगिक खाद्य व्यवस्था से हटकर छोटे किसानों को केन्द्र में रखते हुए स्थानीय खाद्य व्यवस्था की ओर बदलना।

विश्व के स्तर पर इन झूठे समाधानों को 'क्लाईमेट स्मार्ट' कृषि के रूप में ढ़केला जा रहा है। इसे ऐसी जादू की छड़ी के रूप में पेश किया जा रहा है जिसको घुमाते ही जलवायु से सम्बन्धित हर समस्या खत्म हो

जाएगी। 'क्लाईमेट स्मार्ट' खेती में कुछ भी नया नहीं है। यह हरित च ांति के तरीकों को नए तरह से परोसने की कोि ा है। 'क्लाईमेट स्मार्ट' कृषि के पीछे उन्हीं लोगों का हाथ है जिन्होंने हरित च ांति का प्रसार किया था। वि व बैंक इनमें से एक है। इसके जरिए फिर से एक बार इस गलती को दोहराया जा रहा है कि उत्पादन बढ़ाने से ही गरीबों का उद्धार होगा और उनकी कमाई बढ़ेगी। 'क्लाईमेट स्मार्ट' कृषि एक ढ़कोसला है क्योंकि यह औद्योगिक खेती के बुरे प्रभाव और पारम्परिक टिकाप्र कृषि के फायदों में कोई फर्क नहीं करता। यह इस बात को भी नजरअंदाज करता है कि गरीबी उन्मूलन, भूख और जलवायु परिवर्तन के निवारण में पारम्परिक टिकाप्र खेती का कितना महत्वपूर्ण योगदान है। 'क्लाईमेट स्मार्ट' कृषि के आने से नई तकनीकों पर निर्भरता बढ़ेगी। यह अपने साथ कई अन्य चीजें भी लेकर आएगी जैसे ''क्लाईमेट स्मार्ट किस्में'', आगत ऋण (input loan), इत्यादि। पारम्परिक और अनुकूलन के सही तरीकों के साथ–साथ किसान की दे ी बीज प्रबंधन की पूरी तरह से उपेक्षा की गई है। जिस प्रकार हरित च ांति के समय ऋण और तकनीकी मदद के लिए आपके प्र पर रासायनिक खाद और कीटना ाक थोप दिया जाता था ठीक उसी प्रकार अब अनुवं ाक तकनीकी (transgenic) और जैव–प्रौद्योगिकी (bio-technology) हमारे प्र पर थोपी जा रही है। अन्तरराष्ट्रीय किसान आंदोलन 'ला विया कम्पेसिना' (La-via Compesina) का मानना है कि क्लाईमेट स्मार्ट (climate smart) कृषि से यह उम्मीद नहीं लगा सकते कि वह ग्रीनहाउस गैसों में कटौती करेगा या खाद्य असुरक्षा को मिटाएगा या फिर ग्रामीण आर्थिक और सामाजिक विकास में कोई योगदान करेगा। गरीबी, खाद्य असुरक्षा और जलवायु परिवर्तन की समस्याएं बाजार की असफलता नहीं है बल्कि संरचनात्मक दोश है। इनके चि यांवयन से हालात और बिगड़ जाएंगे।

पारिस्थिकीय कृषि की परम्पराओं का धनी होने के बावजूद हमारी ''राष्ट्रीय टिकाप्र खेती मि ान'' (National Mission for Sustainable Agriculture) में ''क्लाईमेट स्मार्ट'' (climate smart) कृषि की झलक देखने को मिलती है। इस मि ान का मुख्य उ ̈ य कृषि उत्पादन को बढ़ाना है पर कुछ खास उपायों द्वारा जैसे जैव–प्रौद्यागिकी (bio-technology) की मदद से फसल और प ाुओं की उन्नत किस्मों को तैयार करके। यह मि ान जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्ययोजना ‹एन.ए.पी.सी.सी›के तहत गठित 8 तकनीकी मि ानों में से एक है जिसे भारत सरकार ने 2008 में जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए गठित किया था। क्लाईमेट स्मार्ट कृषि की झूठी अवधारणा अब ''राष्ट्रीय टिकाप्र खेती मि ान'' के जरिए राज्यों की कार्ययोजना तक पहुंच चुकी है। इन कारणों से इनकी नियत संदेहास्पद हो जाती है कि क्या ये सही में कम कार्बन वाली खेती को बढ़ावा देना चाहते हैं। उदाहरण के तौर पर मणिपुर राज्य की कार्ययोजना ''आधुनिक वैज्ञानिक कृषि'' की बात करता है तो वहीं मध्य प्रदे ा ''कृषि का आधुनिकीकरण और जैव–प्रौद्योगिकी का ज्यादा इस्तेमाल'' को महत्वपूर्ण बताता है। प ि चम बंगाल और राजस्थान दोनों '' ाून्य जुताई खेती'', और राजस्थान ''कार्बनहीन मि ̄ी में कार्बन पृथक्कु रण (carbon sequestration) की क्षमता की खोज'' और ''जैव–प्रौद्योगिकी का ज्यादा इस्तेमाल'' के जरिए कृषि का उद्धार करना चाहते हैं। कई राज्य योजनाएं जैव ईंधन की खेती की भी बात कर रहे हैं।

हमारा मानना है कि ये सारे झूठे समाधान हैं। इनमें से हर एक राज्य हरित च ांति के द्वारा प्रोत्साहित किए गए तकनीकों से उत्पन्न गम्भीर कृषि संकट को अभी भी झेल रहे हैं। ऐसे में जरूरी है कि राष्ट्रीय कार्ययोजना को हरित च ांति के तरीकों का सही आंकलन करना चाहिए जिससे इस तरह के मिथ्या समाधानों से पर्दा उठ

सके। मौजूदा कृषि पद्धतियों की समस्याओं से आंख चुराते रहने से हम कभी भी टिकाप्र कृषि की तरफ बढ़ नहीं पाएंगे जो अनुकूलन और ष ामन दोनों के लिए अनिवार्य है। भारत सरकार को यह स्पष्ट करना चाहिए कि वो किसानों को टिकाप्र खेती और कृषि–पारिस्थितिकी पद्धतियों को अपनाने के लिए किस प्रकार का प्रोत्साहन देगी। भारत सरकार रासायनिक खाद और कीटना ाकों के लिए तो पर्याप्त सब्सिडी देती है पर पर्यावरण की दृष्टि से टिकाप्र खेती करने वालों को किसी भी प्रकार से प्रोत्साहित नहीं करती है। इस प्रकार की खेती करने वाले किसानों को सीधे सब्सिडी पहुंचाने की व्यवस्था होनी चाहिए। सरकार को यह समझना चाहिए कि टिकाप्र खेती इस वह्य जलवायु परिवर्तन से भी ज्यादा अनिवार्य है।

समय की मांग यह है कि अन्तरराष्ट्रीय समझौतों का इन्तजार करने के बजाए स्थानीय स्तर पर, समझदारी के साथ लगातार कार्य किए जाएं। भारतीय किसानों को बदलते तापमान और बढ़ते मौसम की गम्भीर घटनाओं के अनुसार अपने कृषि के तरीकों को उनके अनुरूप बनाना चाहिए। सबसे पहले कृषि–पारिस्थितिकी तंत्र को सुधारने की जरूरत है जिससे आकस्मिक और अनपेक्षित घटनाओं में भी कार्य करते रहने की इनकी क्षमता बढ़ाई जा सके। अनुकूलन का सबसे पहला कदम यही होगा। इस उर्ि य के साथ फोकस ऑन दी ग्लोबल साउथ अपनी यह पुस्तिका प्रका ित कर रहा है। हमारे छोटे और सीमांत किसान इसे पुस्तिका के जरिए जलवायु परिवर्तन की समस्याओं और कृषि में हो रहे प्रभाव के बारे में जान सकेंगे। उदाहरणों के माध्यम से हमने यह भी दिखाने की कोि ा ा की है कि कैसे पारिस्थितिकीय खेती की मदद से इन समस्याओं से निपटा जा सकता है। इस प्रका ान के पहले फोकस ने तीन और पुस्तिकाओं को पारिस्थितिकीय–खेती के विभिन्न आयामों के प्र पर प्रका ित किया है। ये पुस्तिकाएं टिकाप्र व कृषि–पारिस्थितिकी के सिद्धांत पर आधारित अन्य वैकल्पिक तकनीकों, पद्धतियों और तरीकों को उजागर करती हैं। इनकी मदद से छोटे खेत न सिर्फ व्यवहार्य और आत्मनिर्भर बन सकेंगे बल्कि लाभदायक इकाई के रूप में भी उभर सकेंगे। ''जलवायु परिवर्तन और कृषि संकट : कृषि पारिस्थितिकी एक उपाय'' के नाम से यह प्रका ान हमारी कृषि–पारिस्थितिकी श्रृंखला में एक और आयाम जोड़ता है। यह द र्ाता है कि पारिस्थितिकीय खेती में किस प्रकार ष ामन और अनुकूलन की अपार सम्भावनाएं हैं। लिहाजा जलवायु संकट से निपटने के लिए यह ज्यादा उपयुह्य है।

अफ़सर जाफ़री
संयोजक
फोकस ऑन दी ग्लोबल साउथ

जलवायु परिवर्तन क्या है ?

Source : http://www.epa.gov/climatechange/kids/ scientists/clues.html

जलवायु परिवर्तन क्या है ?

लम्बे समय के दौरान अगर किसी क्षेत्र के मौसम में कोई बड़ा बदलाव दिखता है तो उसे जलवायु परिवर्तन कहते हैं। जलवायु परिवर्तन पर संयुह्य राष्ट्ृ के ॅमवर्क कन्वें ान (UNFCCC) ने माना है कि प्राकृतिक कारणों के साथ–साथ जलवायु परिवर्तन का सम्बन्ध प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से मानव निर्मित कारणों से भी है।

जलवायु परिवर्तन कैसे होता है?

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को जानने से पहले यह समझना महत्वपूर्ण होगा कि यह कैसे और किन कारणों से होता है। पृथ्वी गैसों की एक चादर से लिपटी हुई है जिन्हें हम ग्रीनहाउस गैस (Greenhouse gas) कहते हैं। गैसों की यह चादर गर्मी को कैद कर पृथ्वी को गर्म रखती है जिससे हमारा जीवन चय चलता रहता है। इसे ग्रीनहाउस प्रभाव (Greenhouse effect) कहते हैं। इसके बिना पृथ्वी का तापमान दिन में अत्यधिक गर्म और रात में अत्यधिक ठंडा हो जाएगा। अधिक मानवीय चि या–कलाप से इन गैसों की मात्रा दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। विद्युत और प्र र्जा के लिए जीवाव ेश से बना ईंधन (Fossil fuel) जैसे तेल,

कोयला आदि का लगातार दहन, परिवहन, औद्योगिक खपत और कृषि इत्यादि कारणों से ग्रीनहाउस गैस (Greenhouse gas) से बनी चादर मोटी होती जा रही है जिससे और भी ज्यादा गर्मी कैद हो जाती है। इन गैसों में कार्बन डाईऑक्साइड, जल वाश्प थ्भापद्द मिथेन, ओज़ोन, नाईट्रस ऑक्साइड इत्यादि ष्ाामिल हैं। इनकी वजह से तापमान बढ़ता जा रहा है। हमारे पारिस्थितिकी तंत्र (Ecosystem) पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है।

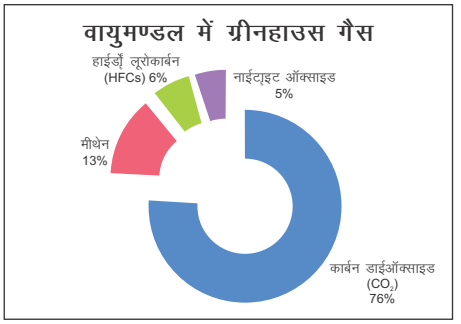

वायुमण्डल में मौजूद ग्रीनहाउस गैस, इनमें कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) सबसे महत्वपूर्ण है और इसका उत्सर्जन प्रचुर मात्रा में होता है।[2]

ग्रीनहाउस गैस (Greenhouse Gases)

पृथ्वी के जलवायु को प्रभावित करने में ग्रीनहाउस गैस की प्रमुख भूमिका है। प्राकृतिक और मानव निर्मित कारणों से प्रत्येक वर्ष इन गैसों से बनी चादर मोटी होती जा रही है। आईये देखते हैं कि ये ग्रीनहाउस गैस कहां से आती हैं और ये किस प्रकार हमारी पृथ्वी को प्रभावित कर रही है।

ग्रीनहाउस गैस (Greenhouse gas)	स्त्रोत
कार्बन डाईऑक्साइड (Carbon Dioxide) इसका प्रचुर मात्रा में उत्पादन होता है और जलवायु में इसके दीर्घकालीन प्रभाव दिखते हैं यह गैस वायुमंडल में काफी लम्बे समय तक रहती है।	जंगलों के कटने से (Deforestation), भूमि उपयोग में बदलाव, कृषि अव ोशों का दहन, ष्ाहरीकरण, औद्योगीकरण, जीवा म ईंधन थ्तेल, कोयला आदिद्दका दहन
मिथेन (Methane) इसके दुष्प्रभाव कार्बन डाईऑक्साइड से ज्यादा गम्भीर होते हैं।	जानवरों द्वारा भोजन चबाने से, खेतों में पानी के जमाव से, कूड़ों के ढेर से, कोयला खदानों से गैस पाइपों में रिसाव से
नाईट्राइट ऑक्साइड (Nitrite Oxide) यह एक महत्वपूर्ण गैस है जिसकी उत्पद्धि मुख्यत: कृषि से होती है	रासायनिक कीटना ाक एंव रासायनिक खाद, गंदा पानी / मल जल (Sewage)
लूरोकार्बन एंव हाईड्रोकार्बन (Fluorocarbon and Hydrocarbon) ये सीधे ओजोन लेयर को प्रभावित करते हैं।	एयर कंडि ान एंव ि ज

[2] *Data on GHGs taken from "Contribution of Working Group I to the Fourth Assessment Report of Intergovernmental Panel on Climate Change", 2007*
http://www.ipcc.ch/publications_and_data/publications_and_data_reports.shtml

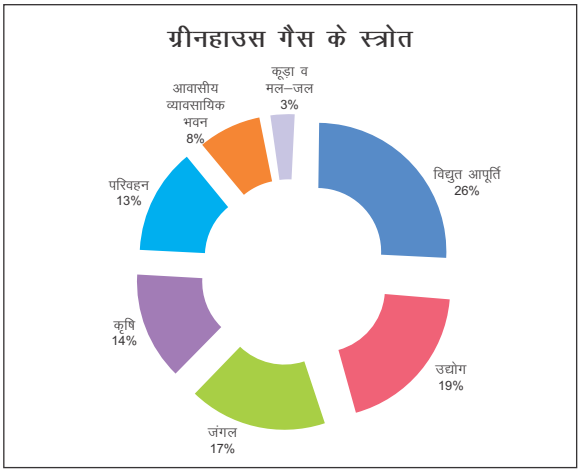

उत्पादन से जुड़ी आर्थिक गतिविधियों के आधार पर वै िक ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन

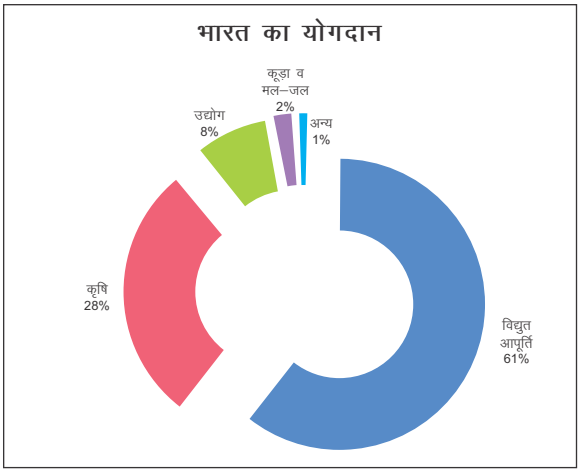

विभिन्न आर्थिक गतिविधियों द्वारा उत्सर्जित ग्रीनहाउस गैस

जलवायु परिवर्तन के कारण

पृथ्वी गति ील है। इसमें प्राकृतिक रूप से बदलाव होते रहते हैं। जलवायु परिवर्तन के पीछे प्राकृतिक एंव मानव निर्मित – दोनों ही कारण मौजूद हैं। पिछले 100 वर्षों से भी ज्यादा समय से जलवायु में बड़ी तेजी से बदलाव आये हैं जिसकी वजह से तापमान और वर्षा में निरन्तर उतार चढ़ाव देखे गए हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार तेजी से हो रहे इन बदलावों के पीछे मानवीय चि या–कलाप हैं जिनके द्वारा वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैस (Greenhouse gas) की चादर मोटी होती जा रही है। इस प्रकार हम जलवायु परिवर्तन के कारणों को दो मुख्य भागों में बांट सकते हैं – प्राकृतिक एंव मानव निर्मित।

प्राकृतिक कारण : जलवायु परिवर्तन के लिए विभिन्न प्राकृतिक कारण जिम्मेदार हैं – जैसे ज्वालामुखी का फटना, सौर विकिरण, पृथ्वी का झुकाव, महाद्वीपों का खिसकना (continental drift) और समुद्री तरंगें (ocean currents)। ज्वालामुखी के फटने से काफी कम समय में वायुमण्डल को काफी ज्यादा नुकसान पहुंचता है। पिछली ष ताब्दी से ही सौर विकिरण में लगातार बदलाव होते आ रहे हैं, परन्तु औद्योगिक च ांति के बाद से इसका असर लगभग 10 गुना ज्यादा बढ़ गया।

मानव निर्मित कारण : जलवायु परिवर्तन और उसके अत्यधिक दुष्प्रभाव जैसे सूखा, असमय वर्षा, बाढ़ इत्यादि के पीछे मानव निर्मित गतिविधियों की प्रमुख भूमिका है। यह जीवा म ईंधन (fossil fuel) जैसे तेल, कोयला आदि के दहन एंव जंगल और कृषि की भूमि का औद्योगिक इस्तेमाल में बदलाव के कारण होता है। औद्योगिक च ान्ति की ष ुरूआत से ही जलवायु के प र मानवीय गतिविधियों का प्रभाव बढ़ने लगा था। पर्यावरण के अलावा इन मानवीय गतिविधियों ने भूमि का चेहरा ही बदल दिया और विभिन्न प्रकार के तत्वों को वायुमंडल में लगातार छोड़ते रहे। इससे पृथ्वी की ओर आने और जाने वाली प्र र्जा की मात्रा प्रभावित हुई और जलवायु पर ष ीतल और तापन प्रभाव पड़ने लगा। जीवा म ईंधन जैसे तेल, कोयला, इत्यादि के दहन

से कार्बन डाईऑक्साइड निकलता है जो बहुत नुकसानदायक ग्रीनहाउस गैस है। वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैस की मात्रा में वृद्धि होने से स्वाभाविक रूप से ग्रीनहाउस प्रभाव बढ़ने लगते हैं।

मानव गतिविधियों के कारण हो रहा ग्रीनहाउस प्रभाव एक गम्भीर विषय है। ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन से पृथ्वी का तापमान इतना ज्यादा बढ़ सकता है कि आज तक मानव सभ्यता के इतिहास में कभी भी अनुभव नहीं किया गया हो। जलवायु परिवर्तन के परिणाम अप्रत्याशित और दूरगामी हो सकते हैं जिन्हें पर्यावरण, सामाजिक और आर्थिक स्तर पर देखा जा सकता है।

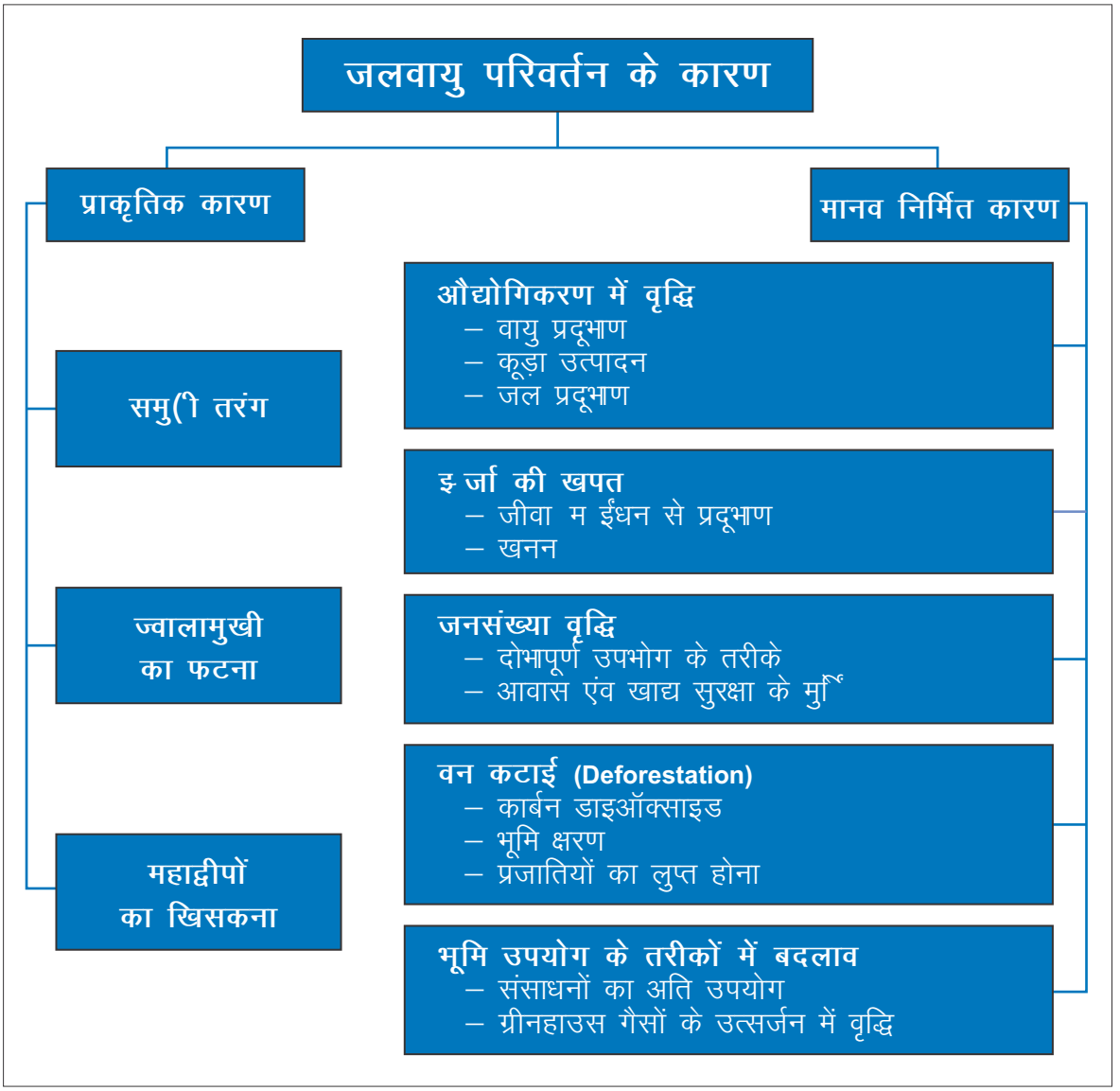

हम अपने रोजाना के ड्डिया कलाप में किस प्रकार जलवायु परिवर्तन को बढ़ाते हैं?_____

- **बिजली** : ष्ाहरी इलाकों में प्र र्जा का प्रमुख स्त्रोत विद्युत/बिजली है। हमारे सारे यंत्र थर्मल पावर प्लांट द्वारा पैदा की गई बिजली से चलते हैं। इन कारखानों में भारी मात्रा में जीवा म ईंधन खासतौर पर कोयले को जलाकर बिजली पैदा की जाती है। इस प्रकार ये कारखाने भारी मात्रा में ग्रीनहाउस गैसों एंव अन्य प्रदूशकों (pollutants) के उत्सर्जन के लिए जिम्मेदार हैं।

- **कार, बस एंव टोक** ष्ाहरों में यातायात और परिवहन के साधन हैं। ये सभी गाड़ियां पेट्रोल और डीजल से चलती हैं जो एक हानिकारक जीव म ईंधन है।

- **प्लास्टिक** के रूप में हम भारी मात्रा में कूड़ा पैदा करते हैं जो कई सालों तक पर्यावरण में मौजूद रहता है और ग्रीनहाउस गैस पैदा कर इसे नुकसान पहुंचाता है। कई बार इन्हें पक्षी और मछलियां खा लेती हैं जिससे उनके स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है।

- **टिम्बर** : घरों के निर्माण में भारी मात्रा में लकड़ी या टिम्बर का इस्तेमाल होता है। इसका मतलब यह है कि इनको प्राप्त करने के लिए वनों के एक बड़े हिस्से की कटाई की गई है। इसके अतिरिह्य स्कूलों और र्दं तरों में रोजाना बड़ी मात्रा में कागज का इस्तेमाल किया जाता है। कागज बनाने के लिए भी पेड़ों की कटाई की जाती है।

- **बढ़ती हुई जनसंख्या** का मतलब है कि ज्यादा से ज्यादा पेटों के लिए अनाज! चूंकि कृषि के लिए उपलब्ध भूमि सीमित है इसलिए कम जगह में ज्यादा पैदावार के लिए एच.वाई.वी य्ज्यादा पैदावार वाली किस्मेंह(High Yield Variety) बीजों का इस्तेमाल किया जाने लगा। उत्पादन बढ़ाने के लिए ज्यादा मात्रा में खाद का भी प्रयोग किया जाने लगा। ज्यादा खाद का मतलब ज्यादा नाईट्रस ऑक्साइड (nitrous oxide) का उत्सर्जन। यह गैस पहले तो खाद के उत्पादन के दौरान कारखाने में पैदा होती है और फिर खेत में डालने के बाद र्मिी से निकलती है। इन फसलों के लिए ज्यादा सिंचाई की भी जरूरत होती है। कई बार ये खाद पानी के साथ बह कर आस–पास के जल निकायों को प्रदूषित कर देती है।

जलवायु परिवर्तन हमें कैसे प्रभावित करता है?

पृथ्वी के हर इलाके में जलवायु परिवर्तन का एक जैसा प्रभाव नहीं पड़ता है। अब यह ज्ञात हो चुका है कि विकास ील दे ाों को जलवायु परिवर्तन के कारण ज्यादा कठिन चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा। वैज्ञानिकों का मानना है कि जलवायु परिवर्तन से निम्नलिखित परिणाम या तो आ रहे हैं या आ सकते हैं :

- सतही तापमान में वृद्धि
- समुह्मके स्तर का बढ़ना
- कृषि पैदावार में गिरावट या बदलाव
- हिमनद (glacier) और समुह्मी बर्फ (sea ice) का पिघलना, जिसके परिणाम स्वरूप स्वच्छ जल की उपलब्धता में गिरावट
- वर्षा में बदलाव ग्मात्रा और पैटर्नह
- च्य वात, तूफान, झंझावात, भारी बारि ा जैसी मौसम की गम्भीर घटनाओं (extreme weather event) की तीव्रता में वृद्धि
- ज्यादा गम्भीर सूखा, बार–बार और अधिक लम्बे समय के लिए
- उपोष्णकटिबंधीय (sub-tropical) रेगिस्तान का विस्तार
- जैव विविधता में गिरावट, प्रजातियों का लुप्त होना, कीड़े मकोड़े के प्रकार व संख्या में वृद्धि से रोगों का प्रसार
- समुह्में के अम्लीकरण से मत्स्य उत्पादन में गिरावट और प्रवाल भिड्डि/मूंगा (coral reef) का विना ा

ये प्रभाव हमारी खाद्य सुरक्षा के लिए एक बड़ी चुनौती हैं। छोटे किसान और उनकी आजीविका पर इनका खास असर देखने को मिल रहा है।

जलवायु परिवर्तन भारत को कैसे प्रभावित कर रहा है

प्रभाव	वर्तमान	भविष्य
तापमान में वृद्धि / गर्म लहर (heat wave)	वर्ष 2015 में भारत ने दूसरी बार सबसे तेज गर्मी की लहर का सामना किया। जून की ष्ुारूआत तक इसकी वजह से दे ा भर में 2000 से अधिक जानें जा चुकी थीं।	भविष्य में इससे भी ज्यादा भयावह और असाधारण गर्म लहरों का दौर बार–बार देखने को मिल सकता है जिसका असर इससे भी बड़े इलाके में पड़ेगा। अगर तापमान 4 डिग्री सेल्सियस से ज्यादा बढ़ जाता है तो प ि चमी तट और दक्षिणी भारत के इलाके उच्च–तापीय जलवायु जोन में परिवर्तित हो जाएगें जिसका सबसे बड़ा असर कृषि पर पड़ेगा।
वर्षा के पैटर्न में बदलाव	पिछले पांच द ाकों में मानसून में भारी गिरावट आई है। मूसलाधार वर्षा की घटनाएं बढ़ी हैं।	मानसून में आए अचानक बदलाव से बड़ी समस्याएं खड़ी हो सकती हैं, जल्दी–जल्दी सूखा पड़ सकता है या बड़े क्षेत्र में बाढ़ आ सकती है। उड्डर प ि चमी तट से लेकर दक्षिणी पूर्वी तटीय क्षेत्रों में औसत से ज्यादा वर्षा हो सकती है। सूखा वर्ष और भी ज्यादा सूखे हो सकते हैं एवं आर्द्र वर्ष और भी ज्यादा गीले हो सकते हैं।
सूखा	प्रमाणों के अनुसार वर्ष 1970 के बाद से दक्षिण ए ि ाया के कुछ इलाकों में सूखा में वृद्धि आई है। सूखा से भारत की आधी से ज्यादा कृषि प्रभावित हुई है जिससे उत्पादन कम हुआ है और अर्थव्यवस्था पर बुरा असर पड़ा है।	भारत के उड्डर प ि चमी इलाकों में जैसे झारखण्ड, ओडि ाा और छड्डीसगढ़ राज्यों में बार–बार सूखा पड़ने की सम्भावनाएं बढ़ गई हैं। अत्यधिक तापमान के कारण फसल उत्पादन में और गिरावट आ सकती है।

भू–जल	भारत में 60 प्रतिशत से ज्यादा कृषि वर्षा आधारित है। अर्थात् यह भू–जल पर निर्भर है। उद्योग और शहरी क्षेत्रों द्वारा भू–जल का पहले से ही अति उपयोग किया जा रहा है।	बढ़ती जनसंख्या, बढ़ते उद्योग, धनी जीवन शैली, वन कटाई, मिट्टी का कटाव/ भू–क्षरण (soil erosion) और भूमि उपयोग में बदलाव के कारण पहले से ही भू–जल स्तर गिर रहा है। इसमें और गिरावट आ सकती है।
हिमनद (ग्लेसियर) का पिघलना	उत्तर–पश्चिम हिमालय और काराकोरम रेंज के ग्लेसियर जिन्हें पश्चिमी शरद हवा से नमी प्राप्त होती है – या तो स्थिर रहे हैं या फिर आगे बढ़े हैं। दूसरी ओर अधिकतर हिमालय के ग्लेसियर जिन्हें ज्यादातर नमी ग्रीष्म मानसून से प्राप्त होती है – पिछले एक शताब्दी से पीछे खिसक रहे हैं।	सिन्धु और ब्रह्मपुत्रा नदियों में बर्फ पिघलने के कारण वसंत में तेज प्रवाह रहेगा और गर्मियों में इनका प्रवाह काफी कम हो जाएगा। सिन्धु, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों के प्रवाह में बदलाव आने से सिंचाई पर असर पड़ेगा। इससे खाद्य उत्पादन में फर्क पड़ेगा और लाखों लोगों की आजीविका प्रभावित होगी।
समुद्र के स्तर का बढ़ना	तटीय बाढ़ से प्रभावित होने वाले सबसे ज्यादा लोग मुम्बई में रहते हैं क्योंकि इस शहर का एक बड़ा हिस्सा ज्वार (high tide) के स्तर से नीचे स्थित है। तेज और अनियोजित शहरीकरण से समुद्री जल भराव का खतरा बढ़ता जाएगा।	भूमध्य रेखा के करीब होने के कारण भारतीय उपमहाद्वीप में ज्यादा तेजी से समुद्री स्तर बढ़ सकता है। समुद्री स्तर के बढ़ने से और तूफानी लहरों द्वारा तटीय क्षेत्रों में नमकीन पानी भर जाएगा जिससे कृषि प्रभावित होगी, भू–जल की गुणवत्ता पर असर पड़ेगा और स्वच्छ जल दूषित हो जाएगा। कोलकाता और मूम्बई दोनों घनी आबादी वाले महानगर हैं। समुद्री स्तर में वृद्धि, उष्णकटिबंधीय चक्रवात (tropical cyclone) और नदी में बाढ़ (riverine flood) से ये सबसे ज्यादा प्रभावित हो सकते हैं।

कृषि और खाद्य सुरक्षा	चावल : हालांकि चावल का कुल उत्पादन बढ़ा है लेकिन फसल के दौरान तापमान में वृद्धि और वर्षा में कमी के कारण भारत के चावल उत्पादन में काफी कमी आई है। अगर जलवायु परिवर्तन नहीं होता तो चावल उत्पादन में कम से कम 6 प्रति ात से ज्यादा की वृद्धि होती य750 लाख टनह। गेहूं : अध्ययन से पता चलता है कि 2001 के बाद से भारत और बांग्लादे ा में गेहूं के उत्पादन में ज्यादा खाद डालने पर भी कोई वृद्धि नहीं हुई है। पाया गया है कि अत्यधिक गर्म तापमान य34 डिग्री सेल्सियस से ज्यादाह के कारण गेहूं की पैदावार में बुरा असर पड़ता है। तापमान में वृद्धि इस स्थिति को और बिगाड़ देगा। पारम्परिक खाद्य सामग्री य्जौ, बाजरा, जैसे मोटे अनाज (millet) और अन्य स्थानीय सब्जियां व फलह को अभी भी बाजार में वह स्थान नहीं मिला है जो मिलना चाहिए। सारा ध्यान नकदी फसलों पर होने के कारण इन प्रमुख भोजन सामग्री को इसका मूल्य चुकाना पड़ता है।	सामयिक पानी (seasonal water) की कमी, बढ़ते तापमान, समुद्र जल का भराव इत्यादि फसल उत्पादन के लिए बड़ी चुनौतियां हैं। इससे भारत की खाद्य सुरक्षा लचर हो सकती है। अगर यह स्थिति नहीं बदली तो चावल और गेहूं के उत्पादन में भारी गिरावट आ सकती है। जलवायु परिवर्तन के कारण अगर वर्ष 2050 तक 2 डिग्री सेल्सियस तापमान बढ़ जाता है तो भारत को आज की तुलना में 2 गुना अधिक अनाज आयात करना पड़ेगा।
पानी सुरक्षा	भारत के कई भागों में अभी से हम पानी की कमी महसूस कर रहे हैं। अगर जलवायु परिवर्तन न भी हो तो भी बढ़ती जनसंख्या और उपभोग के तरीकों (consumption pattern) से	मानसून वर्षा की अस्थिरता में वृद्धि से कुछ इलाकों में पानी की कमी की समस्या और अधिक बढ़ जाने की सम्भावना है।

	भविष्य में होने वाली पानी की मांग को पूरा कर पाना एक बड़ी चुनौती होगी। ष ाहरीकरण, जनसंख्या में वृद्धि, आर्थिक विकास और कृषि और उद्योगों के लिए पानी की बढ़ती मांग से यह स्थिति और बिगड़ जाएगी।	अध्ययन से पता चला है कि पानी की सुरक्षा की चुनौती मध्य भारत, प ि चमी घाट के पवर्तीय क्षेत्र और पूर्वोङ्घर राज्यों को सबसे ज्यादा झेलना पड़ सकता है।
स्वास्थ्य	कुपोषण में वृद्धि और अन्य स्वास्थ्य विकार का सबसे बुरा प्रभाव गरीबों पर पड़ेगा। गर्म लहरें (heat wave) के कारण मरने वाले लागों की संख्या काफी बढ़ सकती है। मौसम की गंभीर घटनाओं (extreme weather event) से और भी ज्यादा नुकसान हो सकते हैं।	मलेरिया एवं दस्त ग्बाल मृत्यू के प्रमुख कारणह जैसे संच ामक रोगों में वृद्धि होगी जहां अभी तक ठंडे तापमान के कारण इन रोगों का विस्तार सीमित था।
प्रवसन (migration)	दक्षिण ए ि ाया के रोग ग्रस्त और पिछड़े इलाकों से भारी मात्रा में लोग काम की तला ा में अन्य दे ाों में जाते हैं। सिन्धु और गंगा–ब्रह्म पुत्र–मेघना घाटी कई दे ाों से होकर गुजरती है। पानी की बढ़ती मांग के कारण इन दे ाों के बीच पानी के बंटवारे को लेकर अभी से तनाव ष ुरू हो गए हैं।	कृषि और आजीविका पर पड़ने वाले जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के कारण जलवायु ष ारणार्थियों (Climate refugee) की संख्या बढ़ जाएगी।

Source : "Turn the Heat Down-Climate Extremes, Regional Impacts and Cases for Resilience", World Bank study, June 2013

जलवायु परिवर्तन समझौते : वैश्विक राजनीति

जलवायु परिवर्तन एक जटिल और चुनौतीपूर्ण मुर्िं है। इसके वैज्ञानिक, सियासी और सामाजिक कारणों के साथ–साथ यह भी समझना जरूरी होगा कि इसके कौन–कौन से सम्भावित पर्यावरणीय और सामाजिक–आर्थिक प्रभाव होंगे और ऐसे में हमारे पास कौन–कौन से विकल्प मौजूद हैं।

जलवायु परिवर्तन के बारे में बेहतर समझ बनाने के लिए वर्ष 1988 में संयुह्य राष्ट्ृ के पर्यावरण कार्यक्र म (United Nation Environment Programme) और वि व मौसम संगठन (World Meteorological Organisation) द्वारा[3] 'जलवायु परिवर्तन पर अन्तरसरकारी समिति' (Intergovernmental Panel on Climate Change: IPCC) का गठन किया गया। आई.पी.सी.सी ने जलवायु परिवर्तन के सामाजिक और आर्थिक प्रभाव, इनके होने के मूल कारण और इनसे निपटने के उपायों के सम्भावित तरीकों से जुड़ी जानकारियों को एकत्र किया। अपने गठन के समय से ही आई.पी.सी.सी आंकलन रिपोर्ट (Assessment report) के माध्यम से वैज्ञानिक जानकारियां साझा करता आया है। जलवायु परिवर्तन पर संयुह्य राष्ट्ृ के े`मवर्क कन्वें ान (United Nations Framework Convention on Climate Change: UNFCCC), अन्य सरकारों एवं अन्तर्राष्ट्ीृय संस्थाओं द्वारा मांगी गई वि ोष जानकारियों को भी आई.पी.सी.सी ने उपलब्ध कराया है। आई.पी.सी.सी का प्रमुख उर्ि य है – जलवायु परिवर्तन के पीछे मानव निर्मित कारणों, उनके प्रभाव और उनसे निपटने के लिए अनुकूलन और ष्ामन जैसे विभिन्न विकल्पों के बारे में अध्ययन कर उपयुह्य जानकारियों को सबके समक्ष प्रस्तुत करना।

UNFCCC समझौते : खोखले वायदे ?

छः द ाकों से भी ज्यादा समय से वि व ने जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों से निपटने के लिए अन्तरराष्ट्ीृय संधियों पर अपना भरोसा जताया है। बिना किसी बाध्यकारी वैि वक संधि के ग्रीनहाउस गैसों को बढ़ने से रोकना सम्भव नहीं जिससे जलवायु परिवर्तन के खतरनाक परिणामों से बचा जा सके। वर्ष 1992 में इन प्रयासों की अच्छी ष्ाुरूआत हुई जब पहली बार इन गैसों के उत्सर्जन को सीमित रखने के लिए UNFCCC के अंतर्गत एक संधि पर 190 दे ों ने एक साथ हस्ताक्षर किए। इसे 'क्योटो प्रोटोकॉल' (Kyoto Protocol) के नाम से जाना गया। परन्तु जल्द ही ये दे ा दो भागों में बंट गए। ज्यादातर विकास ील दे ों का यह मानना था कि उत्सर्जन को कम करने की सारी जिम्मेदारी विकसित दे ों की ही बनती है क्योंकि इन्हीं के द्वारा किए गए अनियंत्रित विकास के कारण यह स्थिति पैदा हुई है। इस बंटवारे का फायदा उठाकर अमेरिका ने इस समझौते पर हस्ताक्षर करने से इंकार कर दिया। अमेरिका का कहना था कि जब तक चीन जैसे बड़े विकास ील दे ा अपने उत्सर्जन को कम करने की प्रतिबद्धता नहीं दिखाते तब तक इस प्रकार के किसी समझौते का कोई भी फायदा नहीं होने वाला।

---

[3] *"Contribution of Working Group I to the Fourth Assessment Report of Intergovernmental Panel on Climate Change", 2007*
http://www.ipcc.ch/publications_and_data/publications_and_data_reports.shtml

पिछले वर्ष नवम्बर 2014 में, वि व के सबसे ज्यादा उत्सर्जन करने वाले दो दे ा – चीन और अमेरिका के बीच एक द्वीपक्षीय समझौता[4] हुआ। यह समझौता ऐसे नाजुक समय में हुआ है जब एकमात्र बाध्यकारी वै िवक संधि अपने निर्णायक मोड़ पर पहुंच चुकी है। क्योटो प्रोटोकॉल की समय सीमा वर्ष 2020 तक ही है। ज्यादातर जलवायु वि ोषज्ञों के मानना है कि 2015 तक एक नया समझौता हो जाना चाहिए ताकि 2020 तक इसका चि यांवयन किया जा सके। यूरोपीय संघ (European Union) ने अपनी तरफ से यह घोषणा[5] की है कि वर्ष 2040 तक वो उत्सर्जन को 1990 के मुकाबले 40 प्रति ात कम करने की कोि ा करेंगे। वि व के बड़े दे ों में और ज्यादा उत्सर्जन करने वाले दे ों में भारत का एक महत्वपूर्ण स्थान है। दिसम्बर 2015 में ़ ांस में होने वाले अगले सम्मेलन में सबकी नजर भारत के प्र पर रहने वाली है।

भारत का दृष्टिकोण : आर्थिक विकास बनाम उत्सर्जन में कटौती

जलवायु परिवर्तन के क्षेत्र में भारत ने दोहरा रवैया अपनाया है। एक तरफ तो अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर भारत ने अपने उत्सर्जन को सीमित रखने के लिए किसी भी प्रतिबद्धता से साफ इन्कार कर दिया है और दूसरी ओर वर्ष 2008 में अक्षय प्र र्जा (renewable energy) को प्रोत्साहित करने के लिए जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना य्एन.ए.पी.सी.सीह्का गठन कर दिया है। वर्ष 2010 में भारत का उत्सर्जन 1.7 मीटिृक टन प्रति व्यक्ति था जो 5 मीटिृक टन के वै िवक औसत से काफी कम है। इसी को आधार बनाकर भारत आज तक अपने उत्सर्जन में कटौती करने से इंकार करता रहा है। अलग–अलग सरकारों ने भी माना है कि उत्सर्जन में कटौती के बजाए, गरीबी उन्मूलन और प्र र्जा का ज्यादा उत्पादन इस वद्य हमारे लिए सबसे बड़ी प्राथमिकता है। पिछले साल 2014 के सितम्बर में संयुद्य राष्टृ के जलवायु ि ाखर वार्ता में भी भारत के पर्यावरण मंत्री ने इस बात को दोहराते हुए कहा कि अगले 30 वर्षों तक भारत किसी भी प्रकार से उत्सर्जन कम कर पाने की स्थिति में नहीं है। भारत के लिए महत्वपूर्ण यह है कि वह तेजी से स्वच्छ प्र र्जा (clean energy) के क्षेत्र में साझेदारी विकसित करे। भारत सरकार ने यह स्पष्ट कर दिया है कि वह पनबिजली, सौर्य प्र र्जा और परमाणु प्र र्जा की परियोजनाओं को प्राथमिकता देगा और इन्हें विकसित करने के हर सम्भव प्रयास करेगा।

जलवायु परिवर्तन के क्षेत्र में भारत की कृषि नीति के लिए यह ज्यादा जरूरी है कि सबसे पहले दे ा की जरूरतों के अनुसार पर्याप्त अनाज उगाया जाए। संपोि ात और टिकाप्र कृषि (sustainable agriculture) के बारे में हमारे नीति निधारकों ने पहले ही अपनी नीतियों की दि ाा इस पुरानी बात को दोहरा कर स्पष्ट कर दिया है कि खाद्य उत्पादन में आत्म निर्भर बनाने के लिए हरित च ांति का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। एक और हरित च ांति सामने खड़ी है। कारखानों में निर्मित रासायनिक खाद, कीटना ाक, जीनांतरित बीज (GMO) और फसलों के निर्यात को आधार बनाकर दूसरी हरित च ांति पर अनुसंधान ष्ाुरू हो चुके हैं।[6] गेहूं और चावल को केंद्र में रखकर अनाज उत्पादन पर ज्यादा ध्यान दिया जा रहा है। ये जलवायु परिवर्तन के नजरिये

---

[4] *https://www.whitehouse.gov/the-press-office/2014/11/11/fact-sheet-us-china-joint-announcement-climate-change-and-clean-energy-c*

[5] *For more information check http://www.teriuniversity.ac.in/mct/pdf/new/environment/India_position_in_the_Climate_Change_negotiations.pdf*

[6] *http://in.reuters.com/article/2015/02/22/india-gmo-modi-idINKBN0LQ01P20150222*

से कमजोर फसलें हैं क्योंकि इन्हें एक–फसली (mono-crop) के रूप में लगाया जाता है और इनमें रसायन की खपत भी ज्यादा होती है। नवधान्य की डॉ. वंदना ि ावा के अनुसार एन.ए.पी.सी.सी. के अन्तर्गत बनाया गया टिकाप्र खेती मि ान इस मिथ्या अवधारणा पर टिका है कि आनुवं ाक अभियांत्रिकी ग्जैनेटिक इंजीनियरिंगह द्वारा हम जलवायु परिवर्तन से निपट सकते हैं। उन्होनें जोर देकर कहा है कि आनुवं ाक अभियांत्रिकी कभी भी सूखा प्रतिरोधी या बाढ़ प्रतिरोधी किस्में तैयार नहीं कर सकता। जीनांतरण (genetic modification) कुछ और नहीं बल्कि चोरी (biopiracy) का एक तरीका है जो खुले आम कमजोर समुदायों की अनुकूलन क्षमता को उनसे छीन लेगा।[7]

आन्तरिक नीतियां और कार्य

जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना (National Action Policy on Climate Change: NAPCC) के तहत अलग–अलग राज्यों को अपनी राजकीय कार्य योजना (State Action Policy on Climate Change: SAPCC) बनाना था। पर्यावरण एंव वन मंत्रालय (MoEF) द्वारा इन कार्य योजनाओं को तैयार करने की रूपरेखा तैयार की गई। अभी तक भारत के सभी राज्य ने इस कार्य योजना को तैयार नहीं किया है और अभी भी इन योजनाओं के चि यांवयन और उसके लिए कोष इकध ा करना जैसी कई समस्याएं इन राज्यों के सामने तैयार खड़ी हैं।

सरकार ने कृषि क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए फसल बीमा एंव मौसम सूचना प्रणाली (weather advisory system) जैसे कई कार्यच मों को आजमाया है। वानिकी, मत्स्य पालन एंव प्र र्जा के क्षेत्र में कार्य करने की सरकार ने खास इच्छा जाहिर की है। हाल के वर्षों में च्य वातों की पूर्व सूचना और तत्परता में काफी सुधार आया है। इससे कई जानें भी बचाई गई हैं। परन्तु वर्षा सम्बन्धी अन्य गम्भीर घटनाओं के बारे में ऐसा कहना मु िकल है। अभी भी अत्यधिक वर्षा, सूखा, बाढ़ से जुड़े पूर्वानुमान लगा पाने में हम सक्षम नहीं हैं। इससे कृषि क्षेत्र को काफी नुकसान हो रहा है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिशद ग्आई.सी.ए.आरह ने वर्ष 2011 में भारत के 100 सबसे ज्यादा जलवायु परिवर्तन से प्रभावित जिलों में 'जलवायु लचीली कृषि पर राष्ट्रीय पहल' ग्एन.आई.सी.आर.एह का गठन किया। इन जिलों का चुनाव सूखा से लेकर अत्यधिक वर्षा, च्य वात एंव अन्य कारकों के आधार पर किया गया। केंद्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान ग्सी.आर.आई. डी.एह ने भी कुछ ष ोध किए एंव प्रौद्योगिकी और क्षमतावर्धन के क्षेत्र में कई प्रयास किए। स्थानीय स्तर पर फसल उत्पादन, प ु–पालन प्रबंधन और प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन इत्यादि प्रयास किए गए। ये सारे कार्यच म अपने ष ुरूआती चरण में है इसलिए इनके प्रभावों का आकलन कर पाना सम्भव नहीं। ये सारे प्रयास ष ामन (mitigation) के क्षेत्र में लिए गए गिने चुने कदम हैं।

क्लाईमेट स्मार्ट कृषि : स्मार्ट किसके लिए ?

संयुह्य राष्ट ृ की खाद्य एंव कृषि संगठन (United Nations Food and Agriculture Organisation: UN-FAO) एक और ऐसी महत्वपूर्ण संस्था है जो दुनिया से भूखमरी मिटाने के लिए प्रयासरत है। यह वि व में अकेली

[7] *http://base.d-p-h.info/fr/fiches/dph/fiche-dph-8762.html*

ऐसी अन्तरसरकारी संस्था है जिसके पास ये अधिकार है कि वह स्थानीय और क्षेत्रीय सहभागियों द्वारा वि व के खाद्य एंव कृषि व्यवस्था को संचालित कर सके।

एफ.ए.ओ के अनुसार क्लाईमेट स्मार्ट कृषि (Climate Smart Agriculture) की संकल्पना पहली बार वर्ष 2010 में हेग में आयोजित ''कृषि, खाद्य सुरक्षा और जलवायु परिवर्तन सम्मेलन'' में प्रस्तुत किया गया। खाद्य सुरक्षा के लिए टिकाप्र कृषि विकास बहुत जरूरी है । इसके के लिए जरूरी तकनीकी, नीति और निवे ा को ध्यान में रख कर क्लाईमेट स्मार्ट कृषि की परिकल्पना की गई थी। कृषि क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन से हो रहे प्रभावों की जटिलता, तत्कालिकता और व्यापकता के मर्निजर यह आव यक हो गया था कि राष्ट्रीय कृषि योजना, निवे ा और कार्यक्रमों में इनका उपयुह्य समावे ा किया जाए।

सितम्बर 2014 में एफ.ए.ओ ने क्लाईमेट स्मार्ट कृषि के लिए एक वैिवक गठबंधन (Global Alliance for Climate Smart Agriculture) बनाया। इसे एक स्वैच्छिक गठबंधन के रूप में तैयार किया गया जो जलवायु परिवर्तन के कारण उभरी खाद्य सुरक्षा एंव कृषि की चुनौतियों से निपटने को समर्पित था। इनके सदस्यों में पर्यावरणीय दल, वर्ल्ड रिसोर्स इंस्टीट्यूट ख्अमेरिका की एक प्रभाव ाली प्राकृतिक संसाधन विचार मंचह्न दानोन य्यूरोप की एक वि ाल खाद्य कम्पनीह्न वर्ल्ड बिजनेस काउंसिल ऑफ सस्टेनेबल डेवेलपमेंट यवि व का पर्यावरण पर सर्वोह्नम प्राईवेट कार्यक्रमह्न इको एग्रीकल्चर पार्टनर ख्कॉरपोरेट अनुकूल टिकाप्र कृषि को बढ़ावा देने के लिए एक निजी इकाईह्न वि व बैंक और 20 से अधिक सरकारें जिनमें अमेरिका, मैक्सिको, युनाईटेड किंगडम, कोस्टा रिका, ॅ ांस ष ामिल हैं। इसके बोर्ड में हरित च्र ांति की वैिवक ष ोध संकाय, कंसलटेटिव ग्रुप ऑन इन्टरने ानल एग्रीक्लचर रिसर्च (CGIAR) भी है। इंटरने ानल फर्टिलाईज़र इंडसटीृज़ एसोसिए ान य्जो उद्योग जगत की ष ोध और विकास ष ाखा हैह्नऔर यारा (Yara) एवं मौज़ाय्क (Mosaic) यवि व की सबसे बड़ी खाद कम्पनियांह्नभी इसके सदस्य हैं।

क्लाईमेट स्मार्ट कृषि का उर्ि य टिकाप्र खेती उत्पादन, किसानों की आजिविका में सुधार और जलवायु परिवर्तन के मर्निजर बेहतर खाद्य व्यवस्था को प्रोत्साहित करना है। यह कृषि द्वारा हो रहे ग्रीनहाउस गैस के उत्सर्जन को विभिन्न व्यवहारिक तरीकों की मदद से कम करने की बात करता है। इन तरीकों में ष ामिल हैं — पलवारना (mulching), अंतः फसलें (inter-cropping), संरक्षित खेती (conservation agriculture), फसल अवर्तन ख्बदल—बदल कर फसल उत्पादनह्न (crop rotation), फसल—प ु पालन का एकीकृत प्रबंधन (integrated crop-livestock management), कृषि—वानिकी (agro-forestry), उन्नत चराई (improved grazing) और उन्नत जल प्रबन्धन (improved water management) इत्यादि। इनके साथ—साथ अन्य नवीन तरीके जैसे मौसम पूर्वानुमान (weather forecasting), सूखा और बाढ़ प्रतिरोधी फसलें (drought- and flood-tolerant crops) एवं फसल और प ु बीमा (crop and livestock insurance) इत्यादि भी ष ामिल हैं।

क्लाईमेट स्मार्ट कृषि पर आरोप है कि यह एक भ्रामक और अन्तर्विरोधी पहल है। यह बड़ी कंपनियों का एक खतरनाक मंच है। पृथ्वी को सबसे ज्यादा नुकसान पहुंचाने वाली बड़ी कृषि कंपनियों को समर्थन अगर कोई दे तो यह अन्तर्विरोध झलकने लगता है। इसके प्र पर यह भी आरोप है कि इसे बड़ी कंपनियों को फायदा पहुंचने के लिए बनाया गया है न कि जलवायु संकट से निपटने के लिए। भूमि हड़पने वाली और जीनांतरित बीज (genetically modified seeds) बेचने वाली कंपनियां यह दावा कर रही हैं कि वे ''क्लाईमेट स्मार्ट'' हैं।

इन कंपनियों से किसानों और समुदायों को गम्भीर सामाजिक और आर्थिक नुकसान उठाने पड़ रहे हैं। यारा यवि व की सबसे बड़ी खाद निर्माताह सिंजेंटा य्जीनांतरित बीज कंपनीह मैक्–डोनाल्ड और वॉलमार्ट जैसी कंपनियां आज की तारीख में ''क्लाईमेट स्मार्ट'' हैं। क्लाईमेट स्मार्ट कृषि पृथ्वी को सबसे ज्यादा नुकसान पहुंचाने वालों को और भी बढ़ावा देता है। हरित च ांति की तरह औद्योगिक खेती को फिर से एक बार बढ़ावा देने की यह एक सोची समझी साजि ा है।

दूसरा मुर्ि यह है कि इस गठबंधन के प्रोजेक्ट को कार्बन समंजन स्कीम (carbon-offset scheme) के कोश से चलाया जाना था। कार्बन समंजन के तहत उद्योगों को अपने उत्सर्जन की क्षतिपूर्ति के लिए, कार्बन कटौती लक्ष्य को हासिल करना होता है। निम्न कार्बन अर्थव्यवस्था की ओर अग्रसर होने के लिए इस कोश से कार्बन ऋण उपलब्ध कराया जाता है। पर्यावरण को हो रहे नुकसान की क्षति पुर्ति के लिए इन उद्योगों के प्र पर काफी दबाव है। इसके जरिए विकसित दे ा, 'ग्लोबल साउथ' के अविकसित और विकास ील दे ों से कार्बन च डिट खरीदते हैं ताकि वे अपने दे ों में उत्सर्जन करते रहें। इस प्रवि या में छोटे किसानों के प्र पर काफी बुरा असर पड़ता है। इनके प्र पर ष ामन (mitigation) का बोझ लाद दिया जाता है जबकि उत्सर्जन में इनकी भूमिका न्यूनतम है। और तो और ये जलवायु संकट के प्रति अति संवेदन ील होते हैं। इस प्रकार क्लाईमेट स्मार्ट कृषि की संरचना कार्बन मार्केट को बढ़ाने के लिए की गई है। यह सिर्फ कृषि उद्योगों और वि्ीय उद्योगों के हित में है। इसको कभी भी जलवायु संकट के वास्तविक कारणों से निपटने के लिए नहीं बल्कि 'प्रदूषकों' के लिए एक लाभप्रद व्यापार के रूप में बनाया गया था।

वि व भर में छोटे किसानों द्वारा हरित च ांति, औद्योगिक खेती और 'क्लाईमेट स्मार्ट' कृषि के विकल्प तैयार किए जा रहे हैं। इन विकल्पों को अपनाया भी जा रहा है। जलवायु संकट एवम् भूख की समस्या से निपटने के सच्चे उपाय पारिस्थितिकीय खेती (agro-ecology) और खाद्य व्यवस्था को स्थानीय स्वरूप प्रदान करने में है। सरकारें, दाता संस्थान और अन्तरराष्ट्ीय संगठन अभी भी अपने संसाधनों को जलवायु को क्षति पहुंचाने वाले कार्यों य्जैसे रासायनिक–सघन औद्योगिक खेती और मांस–उत्पादनह से हटाकर परिस्थितिकीय खेती, खाद्य संप्रभुता और छोटे किसानों को सहयोग के तरफ निवे ा करने से हिचकिचा रहे हैं। ''कृषि पारिस्थितिकी पर अन्तर्राष्ट्ीय फोरम'' (International Forum for Agroecology) के अनुसार जलवायु और कुपोषण जैसे संकट से निपटने के उपाय औद्योगिक मॉडल को अपनाने में नहीं है। यह अनिवार्य है कि किसान, मछुआरे, चरवाहे, आदिवासियों, ष ाहरी कृषकों इत्यादि द्वारा सही अर्थों में किए गए कृषि–पारिस्थितिकीय खाद्य उत्पादन के आधार पर हम अपनी स्थानीय खाद्य व्यवस्था का खुद निर्माण करें जिससे गांव और ष ाहर के बीच एक नई कड़ी तैयार हो। हम पारिस्थितिकीय खेती को औद्योगिक खाद्य उत्पादन के मॉडल का हिस्सा नहीं बनने दे सकते। यह उसका एक विकल्प है। इस विकल्प के जरिये हम अपनी खाद्य उत्पादन को मानवता और धरती माता के उपकार की दि ाा में बदल सकते हैं।[8]

[8] *http://www.foodsovereignty.org/forum-agroecology-nyeleni-2015/*

भारत में जलवायु परिवर्तन और कृषि

पिछले खरीफ में सूखा के कारण मेरी धान की फसल बर्बाद हो गई। इस बार गेहूं की फसल पकने ही वाली थी कि बारिश की मार झेलनी पड़ी। अब सिर्फ भूसा ही बचा है। करीब 70 प्रतिशत से ज्यादा गेहूं का नुकसान हो गया। मेरे पिता को इतना बड़ा झटका लगा की वे खेत में ही गिर पड़े और वहीं उन्होंने अपना दम तोड़ दिया। हमें बैंक और सूदखोरों का 10 लाख का कर्जा उतारना है।

— **राजेश सिंह,** *27 वर्ष, किसान, मथुरा, उत्तर प्रदेश*

दस साल पहले तक हमारे पास अंदाजन 5000 सेबों की पेटियां हो जाती थीं। कुछ सालों से हिमपात में कमी आई है। उसके बाद हिमपात देर से होने लगी और अब बर्फ कुछ हफ्तों के लिए ही पड़ती है। अब सेबों की 1200 पेटियां ही हो पाती हैं। अगर बर्फ सही समय पर नहीं पड़े तो सेब में फूल नहीं आते। हमारे पास इतने पैसे नहीं हैं कि स्पीति के ऊपरी इलाकों पर जमीन खरीद सकें जैसा की हमारे पड़ोसियों ने किया। अब सेबों की कमाई से जीवनयापन कर पाना असम्भव सा हो गया है।

— **सुमिरन सिंह वर्मा,** *53 वर्ष, किसान, शोधी, शिमला, हिमाचल प्रदेश*

मैं बीटी कपास (BG-II or Bollgard 2) लगाता था। उनमें रासायनिक खाद और कीटनाशक भी डालता था। मैंने पास के महाजन से कर्जा लिया। तीन साल से बारिश नहीं हुई। जमीन सूख कर फट गई है। फायदा तो भूल जाइए मैं अब कर्जदार हूं। पिछली गर्मी में मेरी हिम्मत टूट गई। मेरी जमीन इतनी ज्यादा झुलस चुकी है कि अब इसमें कुछ भी उगाना सम्भव नहीं।

— **डी. नयानप्पा,** *40 वर्ष, किसान, कुरनूल, आंध्र प्रदेश*

जब मैं छोटी थी, बाढ़ की मदद से हम तीन फसल उगा लिया करते थे। जमीन इतनी उपजाऊ थी कि कभी–कभार चार फसल भी हो जाती थी। अब सब कुछ बदल चुका है। अब हम यूरिया और दूसरे पैकेट फसलों को कीट से बचाने के लिए डालते हैं। पर इससे भी कोई फायदा नहीं हो रहा क्योंकि आजकल बहुत सारे नए–नए कीट आ गए हैं। पिछले 10 वर्षों में वर्षा में भी काफी बदलाव आए हैं। हर चीज पर इसका असर पड़ रहा है।

— **प्राबाना अमीन,** *58 वर्ष, किसान, सीतामढ़ी, बिहार*

जलवायु परिवर्तन से सबसे ज्यादा नुकसान कृषि को क्यों ?

भारत में 60 करोड़ लोग कृषि और कृषि सम्बन्धित व्यवसायों पर निर्भर हैं। इनमें से अधिकां ा छोटे किसान हैं जिनके पास 2 हेक्टेयर या उससे भी कम जमीन है। दो–तिहाई से ज्यादा खेत वर्षा आधारित ख्बारानीह्हैं। इनमें से दो–तिहाई सूखा प्रभावित हैं। करीब 4 करोड़ हेक्टेयर भूमि बाढ़ प्रभावित है।[9] सबसे गरीब लोग भौगोलिक रूप से सबसे ज्यादा प्रभावित क्षेत्र या हा ाए पर स्थित हैं जैसे – बाढ़ के मैदान और कम उपजाप्र जमीन। गरीबों के पास जलवायु के प्रभाव से निपटने की काफी सीमित क्षमता होती है। जलवायु के कारण हो रहे नुकसान का बोझ उठाने के लिए इनके पास ज्यादा साधन नहीं होते हैं।

[9] *http://www.dieselhal.com/blog/uncategorized/climate-change-consequences-indian-farmers/*

जलवायु परिवर्तन कृषि के लिए बड़ी गम्भीर चुनौती है क्योंकि इसका सीधा सम्बन्ध पानी की उपलब्धता ग्वर्षा और भू–जलह्न वायु, मृदा और जैव–विविधता से है। इनमें से किसी में भी थोड़ा सा भी बदलाव आ जाए तो भारत की कृषि का चेहरा पूरी तरह से बदल सकता है। भारत में खाद्य उत्पादन मानसून और तापमान के उतार चढ़ाव के प्रति काफी संवेदन ाील है। तापमान में वृद्धी का सीधा असर रबी फसल पर पड़ता है। प्रत्येक 1 डिग्री सेल्सियस की बढ़ौड्ढरी से गेंहूं उत्पादन में 40–50 लाख टन का फर्क पड़ जाता है। तापमान और वर्षा में थोड़े से भी बदलाव से फल, सब्जियां, चाय, कॉफी, बासमती एवं अन्य सुगंधित और औषधीय पौधों की गुणवद्धा और मात्रा में काफी असर देखने को मिलता है।[10]

भारत एक वि ाल दे ा है। यह जलवायु के बदलावों का अपने सामने होते देख रहा है। इससे जलवायु परिवर्तन से निपटने में काफी अड़चनें आती हैं। मानसून पर निर्भर छोटे किसानों के लिए कृषि असुरक्षित है। पारम्परिक जानकारी को साझा करने और प्र िाक्षण व आदान–प्रदान के द्वारा नई जानकारी हासिल करने के सीमित साधन होने के कारण ये किसान अजीबो–गरीब स्थिति में फंसे रहते हैं। मौसम में बदलाव, तापमान में वृद्धि, अनियमित वर्षा के कारण पहले से ही हमारी पारिस्थितिक व्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। इन्हें हम फसलों, मवे ियों, कीट और रोगाणुओं में बदलाव के रूप में देख सकते हैं। इसी साल 2015 के अप्रैल माह में हमने देखा कि कैसे वर्षा ने गेहूं की फसल पर कहर ढाया। फसल नष्ट होने से किसान और ज्यादा कर्जदार होते जा रहे हैं।[11]

ऐसा नहीं है कि सिर्फ जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि को नुकसान पहुंच रहा है। कृषि के तौर तरीकों से जलवायु भी प्रभावित हो रहा है। भारत में प्र र्जा क्षेत्र के बाद ग्रीनहाउस गैस के उत्सर्जन में सबसे बड़ा योगदान कृषि का है। मिथेन और नाईट्राइट ऑक्साइड जैसी खतरनाक गैस कृषि के अलग–अलग तरीकों से निकलती है। रासायनिक खाद और कीटना ाक डालने से भी इन गैसों का प्रचुर मात्रा में निर्माण होता है। फसल अव ोश को जलाने से भी काफी ग्रीनहाउस गैस का उत्सर्जन होता है। इसके अलावा प ाुओं द्वारा चबाने की प्रचि या में मिथेन गैस बनती है। खेत में म ाीनों के प्रयोग ग्वासतौर पर डीजल चलितह्न और जैव–ईंधन (Biomass) के दहन से भी काफी नुकसान पहुंचता है।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव

भारत एक वि ाल दे ा है जिसे मृदा, पानी की स्थिति और जलवायु के आधार पर विभिन्न जलवायु क्षेत्रों ग्जोनह्न में बांटा गया है। भारत में ऐसे 6 अलग–अलग जलवायु जोन हैं। भविष्य में होने वाले कुछ प्रभावों को हमने यहां सूचीबद्ध किया है। यह प्रभाव सिर्फ जलवायु पर ही निर्भर नहीं हैं बल्कि कृषि में प्रचलित तरीकों का भी इन पर असर होता है। इसके साथ–साथ हम कुछ महत्वपूर्ण फसलों के प्र पर पड़ने वाले प्रभाव व कृषि से जुड़े अन्य कारकों को भी समझने की कोि ा ा करेगें।[12]

---

[10] *"Statistics Related to Climate Change in India", Ministry of Statistics and Programme Implementation, November 2013*

[11] *http://www.aljazeera.com/news/2015/04/unseasonal-rain-destroys-india-ripened-crops-150415094557312.html*

1. गंगा के मैदान (Indo-Gangetic Plains)

यह क्षेत्र नदियों से भरा हुआ है और यहां की मिर्ी बहुत उपजाप्र है। गंगा के मैदानी इलाके पूरी तरह से सिंचित हैं और यहां धान, गेहूं, तिलहन, दलहन, और सब्जियां उगाई जाती हैं। द कों से रासायनिक खाद और कीटना क के अति उपयोग से यहां की मिर्ी खराब हो गई है और भू–जल का स्तर लगातार गिरता जा रहा है। हिमनदों के पिघलने से जल प्रवाह में कमी आ सकती है। जलवायु परिवर्तन की वजह से उत्पादन में गिरावट की आ ंका है जिसकी वजह से बीजारोपण के तरीकों में बदलाव लाने की जरूरत पड़ेगी। वर्ष 2050 तक यह क्षेत्र अत्यधिक गर्मी (heat stress) के साथ अल्पकालीन–मौसम (short seasons) में परिवर्तित हो सकता है।

2. हिमालयी क्षेत्र (Himalayan Belt)

इस क्षेत्र में स्थित हिमनद उङ्कर भारत में बहने वाली नदियों को जल प्रदान करते हैं। बढ़ते तापमान के साथ ये हिमनद पहले से भी ज्यादा तेजी से पिघल रहे हैं जिसकी वजह से कभी–कभी नदियों में बाढ़ आ जाती है। भविष्य में स्वच्छ पानी (fresh water) की उपलब्धता पर गम्भीर संकट आ सकते हैं। इसका सीधा असर फसलों के उत्पादन में गिरावट के रूप में पड़ सकता है।

3. गर्म व आर्द्र क्षेत्र (Hot and Humid Zone)

इस क्षेत्र के अन्तर्गत ओडि ाा, छङ्कीसगढ़, पि चम बंगाल के कुछ भाग, मध्यप्रदे ा, और महाराष्ट्र आते हैं जो पूरी तरह से वर्षा पर आधारित हैं। यहां धान, दलहन, मूंगफली और मोटे अनाज के साथ–साथ छोटे किसान कपास जैसे नकदी फसल भी उगाते हैं। उच्च तापमान और सूखा से यहां की फसलें बर्बाद हो सकती हैं। यहां की मिर्ी सूखी और बेजान है जिसके कारण यहां का सारा पानी बह जाता है। जलवायु परिवर्तन के कारण इस इलाके में कम वर्षा हो सकती है और सूखा की स्थितियां पैदा हो सकती हैं। मौसम सम्बन्धित गम्भीर घटनाएं यहां बार–बार घट सकती हैं।

4. उष्णकटिबंधीय आर्द्र क्षेत्र (Tropical Wet Region)

इस क्षेत्र में भारतीय प्रायद्वीप (peninsula) के दक्षिणी भाग आते हैं जहां आमतौर पर गर्मी ज्यादा पड़ती है और सर्दियां भी गर्म होती हैं। उष्णकटिबंधीय वर्षा–वन (rainforest) में उगने वाले बागानी कृषि[13] (plantation crops) के साथ–साथ समुद्री मत्स्य उत्पादन पर भी जलवायु परिवर्तन का असर पड़ सकते है। इस क्षेत्र में नारियल, सुपारी, मसाले और दलहन का भारी मात्रा में उत्पादन होता है। जलवायु परिवर्तन के कारण समुद्री जल स्तर में बढ़ौङ्करी हो सकती है जिससे मृदा और मीठे पानी के लवणीकरण की सम्भावनाएं बढ़ जाएंगी। इससे इस इलाके के फसल और मत्स्य उत्पादन गम्भीर रूप से प्रभावित होगें।

---

[12] *"Rising to the Call: Good Practices of Climate Change Adaptation in India", Centre for Science and Environment, 2014*

[13] *बड़े–बड़े बगानों के रूप में की जाने वाली कृषि जिसमें एक बार वृक्षों के बगान लगा दिए जाते हैं और कुछ समय पश्चात से कई वर्षों तक उसमें से उत्पादन होता रहता है।*

5. शुष्क एंव आर्द्र शुष्क क्षेत्र (Arid and Semi-arid Zone)

इस क्षेत्र में थार रेगिस्तान, गुजरात और दक्कन के पठार आते हैं। यहां वर्षा आधारित कृषि प्रचलित है। पानी की अत्यधिक कमी और उच्च तापमान के कारण यहां की पैदावार पहले से ही कम है। वर्ष 2006 में बाड़मेर में आई बाढ़ ने सब कुछ तहस–नहस कर दिया था और अपने पीछे कई बीमारियां छोड़ गई थी। राजस्थान में जिस तेजी से जमीन से पानी निकाला जा रहा है उससे राज्य के कई इलाकों के भू–जल में नमक, फलोराइड, क्लोराइड, लोहा, नाईटेट की मात्रा बढ़ गई है और पानी पीने के लायक नहीं बचा है। इस प्रकार के जल संकट और अतिवृष्टि जलवायु परिवर्तन की वजह से और भी गम्भीर हो सकते हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण इस इलाके में अत्यधिक वर्षा हो सकती है जिससे न सिर्फ पैदावार पर असर पड़ेगा बल्कि जानोमाल के भी नुकसान का खतरा बना रहेगा।

6. डेल्टा[14] और तटीय क्षेत्र (Delta and Coastal Areas)

पि चम बंगाल के डेल्टा क्षेत्र के सामने पूरी तरह से जलमग्न होने का खतरा मंडरा रहा है। सुन्दरवन के कुछ द्वीप पहले से ही जलमग्न हो चुके हैं जिससे यहां के स्थानीय लोगों को पलायन करना पड़ रहा है। करीब 7000 लोग यहां से विस्थापित हो चुके हैं और अंदाजा है कि वर्ष 2030 तक इनकी संख्या बढ़कर 70,000[15] हो जाएगी। समुद्री जल स्तर के बढ़ने से इनके आवास छीन गए हैं। यहां की जैव–विविधता पर भी खतरा मंडरा रहा है। बाढ़ और नमकीन पानी से यहां के निचले इलाके भर सकते हैं जिससे पि चम बंगाल और ओडि ा के कई इलाकों में खेती करना नामुमकिन हो जाएगा। धान, जो यहां की प्रमुख फसल है और समुद्री मत्स्य उत्पादन पर इसका गहरा असर पड़ेगा। स्वच्छ पानी की उपलब्धता सबसे बड़ी चुनौती बन कर सामने आएगी। इसके साथ–साथ चय वात और ज्वारीय धारा (tidal wave) जैसी घटनाओं में बढ़ौड्डरी हो सकती है।

फसलें एंव अन्य घटक

वर्ष 2014 में आई जलवायु परिवर्तन पर अन्तरसरकारी समिति (Intergovernmental Panel on Climate Change: IPCC) की एक रिपोर्ट के अनुसार वै िवक ताप में वृद्धि और खाद्य की बढ़ती मांग स्थानीय और वि व के स्तर पर एक बड़ी चुनौती बन कर सामने आ सकती है। इसमें द र्ाया गया है कि मात्र 1 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि से गेहूं, चावल, धान, जैसी मुख्य फसलों पर गम्भीर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकते हैं। भारत के लिए यह पूर्वानुमान लगाया गया है कि मुख्य फसलों के प्र पर गहरा असर पड़ेगा जिससे खाद्य सुरक्षा प्रभावित होगी। वर्ष 2030 के बाद कुल खाद्य उत्पादन में गिरावट आ सकती है।[16] खरीफ फसलें वर्षा में बदलाव के कारण प्रभावित होंगी वहीं बदलते तापमान के कारण रबी को नुकसान पहुंच सकता है। गेंहू के प्र पर टर्मिनल हीट स्ट्रेस के कारण बुरा प्रभाव पड़ेगा। हालांकि इन बदलावों के लक्षण अनि िचत हैं पर फिर भी इतना तय है कि बदलते पर्यावरणीय मापदण्डों का फसलों और पारिस्थितिक तंत्र पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। आईये देखते हैं कुछ वि ोष फसलों तथा कृषि के अन्य पहलू जलवायु परिवर्तन से किस प्रकार प्रभावित होने

---

[14] *नदी से बना तिकोणीय उपजाऊ क्षेत्र*

[15] *"Suffering The Science: Climate Change, People and Policy", Oxfam International, 2009*

[16] *"Climate Change : IPCC Report Warns of Looming Food Crisis", Down to Earth, 31 March, 2014*

वाले हैं।	
गेहूं	यह अनुमान लगाया जा रहा है कि तापमान में एक डिग्री सेल्सियस की वृद्धि से वार्षिक गेहूं उत्पादन में 60 लाख टन की गिरावट आ सकती है।[17] हरियाणा, उड्ढर प्रदे ा और पंजाब जैसे उड्ढर भारत के राज्यों पर इसके सबसे बुरे प्रभाव देखने को मिलेंगे। वर्ष 2003–2004 के फरवरी–मार्च के दौरान हरियाणा में रात का तापमान सामान्य से 3 डिग्री सेल्सियस अधिक दर्ज किया गया। बाद में देखा गया कि गेहूं का उत्पादन 4106
चावल	किलो प्रति हेक्टेयर से घट कर 3937 किलो प्रति हेक्टेयर हो गया है।[18] अगर तापमान में 1–4 डिग्री सेल्सियस तक की वृद्धि होती है तो धान के उत्पादन में 10 प्रति ात प्रति डिग्री की दर से गिरावट आएगी। बासमती जैसे प्रमुख नकदी फसल में तापमान की वृद्धि से परागण ठीक से नहीं हो पा रहा है और दाने कम बन रहे हैं।[19] वर्षा में आ रहे बदलाव का भी बुरा असर धान पर पड़ रहा है। सूखा जैसी स्थिति और असमान वर्षा का धान के उत्पादन पर फर्क पड़ेगा। दे ा के पूर्वी और पूर्वोड्ढर इलाकों में तापमान में वृद्धि और अनियमित वर्षा बढ़ सकती है। इससे उत्पादन में जो कमी आएगी उसका फल भारत के असंख्य चावल प्रमियों को भुगतना पड़ेगा। इससे भुखमरी जैसी स्थिति भी पैदा हो
मक्का	सकती है। पहाड़ी और रेगिस्तान के इलाकों में मक्का एक महत्वपूर्ण अनाज है। इस पर खास तौर से वर्षा का असर पड़ता है। अनियमित वर्षा से इसके उत्पादन में कमी आ सकती है। तापमान में वृद्धि की भी अहम भूमिका है। आने वाले द ाकों में मानसून के दौरान इसके उत्पादन में दक्षिण पठार के क्षेत्र में 35 प्रति ात तक और गंगा के मैदानी क्षेत्र में 55 प्रति ात तक कमी
उत्पादन मत्स्य ्यसमुद्री और स्वच्छ पानीह	आ सकती है।[20] सभी समुद्री जीवों का जीवन और उनका भौगोलिक फैलाव जलवायु परिवर्तन से प्रभावित हो सकता है। समुद्री और स्वच्छ पानी की मछलियां जिन इलाकों में पाई जाती हैं वे या तो बदल जाएगें या सिकुड़ जाएगें। चूंकि सारी प्रजातियां एक दूसरे से जुड़ी हुईं हैं, किसी एक प्रजाति के समुह में आए किसी भी बदलाव से पूरा पारिस्थितिक तंत्र बदल जाएगा। समुद्री

[17] *Aggarwal, PK and Swaroop Rani, DN., "Assessment of Climate Change Impacts on Wheat Production in India", Indian Council of Agricultural Research, New Delhi*

[18] *Ibid*

[19] *Singh, SD., Chakrabarti, B and Aggarwal, PK., "Impact of Elevated Temperature on Growth and yield of some Field Crops, Global Climate Change and Indian Agriculture," ICAR Network Project, Indian Council for Agricultural Research, New Delhi*

[20] *Ibid*

	सतह के तापमान में वृद्धि से अंडे देने की क्षमता में कमी आ सकती है। प्रजनन के इलाके बदल चुके हैं और ये उपयुक्त तापमान वाली जगहों की तरफ बढ़ रहे हैं। इसका सीधा
मिट्टी (मृदा)	असर मछलियों की उपलब्धता और मछुआरों की आजीविका पर पड़ेगा खास तौर पर गर्मी के महीनों (अप्रैल से सितम्बर) के दौरान। तापमान और वर्षा में बदलाव का सीधा असर पानी के बहाव और मिट्टी के कटाव पर पड़ता है। इससे मिट्टी की जैविक कार्बन, नाईट्रोजन की मात्रा और लवणता पर प्रभाव पड़ता है। मिट्टी की जैव विविधता पर भी इसके असर देखने को मिलता है अर्थात् मिट्टी की उर्वरता के लिए जरूरी सूक्ष्म जीव नष्ट हो जाते हैं। इसके अलावा रासायनिक खाद और कीटनाशक के अधिक उपयोग से मिट्टी के पोषक तत्व खत्म होते जा रहे हैं। इनकी वजह से भू–जल प्रदूषित हुआ है और मिट्टी की उर्वरता में कमी आई है। मिट्टी की सजीव क्रिया इनके
पानी	इस्तेमाल से नष्ट हो जाती है और इनसे नाईट्रस ऑक्साइड जैसी हानीकारक ग्रीनहाउस गैस बनती है। वर्ष 2050 तक दक्षिण एशिया के 25 करोड़ लोग पानी की कमी से प्रभावित हो सकते हैं।[21] विलम्बित मानसून, बार–बार आने वाला सूखा, असमय वर्षा, ओले एंव बाढ़, भारतीय कृषि के लिए एक मुश्किल स्थिति पैदा कर देंगे। बढ़ते तापमान और मौसम की गम्भीर घटनाओं से पानी की कमी का सामना करना पड़ सकता है क्योंकि इससे वाष्पीकरण की दर बढ़ जाएगी। कई इलाकों में बाढ़ भी आ सकती है। भारतीय कृषि अधिकांश रूप से वर्षा पर आधारित है और अनियमित वर्षा होने से सिंचाई की आवश्यकता बढ़ जाएगी। इसके
पशुपालन और मुर्गी पालन	साथ–साथ उद्योग और शहरी क्षेत्र भी भारी मात्रा में पानी की मांग करेंगे जिससे स्थिति और भी गम्भीर हो सकती है। जलवायु परिवर्तन से जीवों के जीवन चक्र का लय प्रभावित हो सकता है। आर्द्रता और तापमान में वृद्धि से पशुओं की खुराक कम हो जाती है। उनके प्रजनन तंत्र बिगड़ जाते हैं और उनके दुग्ध उत्पादन में गिरावट आती है। सीमित जल उपलब्धता से प्रजनन तंत्र और दुग्ध उत्पादन में फर्क पड़ सकता है। अन्य इलाकों की अपेक्षा उत्तर भारत में गायों और भैसों के दुग्ध उत्पादन में जलवायु परिवर्तन का ज्यादा असर पड़ेगा।[22] गर्मी की लहर के
और रोग	कारण मुर्गी पालन प्रभावित हो सकता है क्योंकि ऐसे में मुर्गियों की स्वास्थ्य समस्याएं बढ़ सकती हैं।

[21] "Beyond Scarcity: Power, Poverty and Global Water Crisis," Human Development Report, UNDP, 2006

[22] Upadhyay, RC., Sirohi S., Ashutosh, Singh, SV., Kumar A., and Gupta, SK., "Global Climate Change and Indian Agriculture, Case Studies from the ICAR Network Project," Indian Council of Agricultural Research, New Delhi

अनुकूलन और शमन (Adaptation and Mitigation)

जलवायु परिवर्तन के बुरे प्रभाव हमारे जीवन के हर पहलू पर पड़ रहे हैं और आगे भी पड़ते रहेंगे। भारत जैसे गरीब दे ा में खासतौर पर छोटे किसानों के लिए इससे जुड़ी चुनौतियां दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। भोजन का अधिकार, पोषण, खाद्य सुरक्षा और खाद्य संप्रभुता संकट में है। इन बदलावों को कम करने या खत्म करने के लिए आव यक है कि हम अपने तौर–तरीकों में कुछ बदलाव लाएं ताकि मनुष्य का इस धरती पर अस्तित्व बना रहे। जलवायु परिवर्तन से लड़ने के लिए कई प्रकार के अनुकूलन और ष ामन के तरीके मौजूद हैं। ये तरीके बाजार और बड़ी कम्पनियों द्वारा प्रेरित मौजुदा और हावी प्रचि याओं का विरोध करते हुए एक विकल्प प्रस्तुत करते हैं। इन बदलावों से उभरने के लिए इनका विरोध करना आव यक है। जलवायु परिवर्तन पर अन्तरसरकारी समिति श्आई.पी.सी.सीह्के अनुसार, ग्रीनहाउस गैस को कम करने के लिए मानव द्वारा किए गए प्रयासों को 'ष ामन' कहते हैं। इसके साथ–साथ जलवायु परिवर्तन के अनुसार अपने आप को ढालने की क्षमता को 'अनुकूलन' कहते हैं।[23] इस प्रकार एक तरफ अनुकूलन लोगों एंव परिस्थितिक तंत्र की जलवायु के प्रति संवेदन ीलता को कम करता है वहीं दूसरी ओर ष ामन जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने के प्रयास करता है। इनमें से कोई भी अकेले जलवायु परिवर्तन से निपटने में सक्षम नहीं है। इस संकट से तभी उभरा जा सकता है जब ष ामन द्वारा उत्सर्जन के स्तर को कम किया जाए और अनुकूलन द्वारा स्थानीय समुदायओं को इनके प्रभावों से जूझने के लिए स ाक्त किया जाए।

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों के आंकलन के लिए बहुत बड़े स्तर पर भौतिक, जैव और सामाजिक–आर्थिक मॉडल, पद्धतियों और सुनियोजित जानकारियों की जरूरत पड़ेगी। जलवायु परिवर्तन से निपटने के मौजुदा प्रयासों और प्रतिबद्धता के आंकलन से यह स्पष्ट है कि हम ग्रीनहाउस गैसों में कटौती का लक्ष्य बिलकुल हासिल नहीं कर पायेंगे। ऐसे में अनुकूलन अव यंभावी हो जाता है। इस बात पर दृढ़ वि वास जताया जा रहा है कि टिकाप्र विकास के मार्ग पर चलते हुए जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने का सबसे महत्वपूर्ण तरीका समाज की जूझने की क्षमता को बढ़ाना है। आई.पी.सी.सी के अनुसार कृषि में मौजूद कुछ ष ामन के उपाय आगे चल के काफी महत्वपूर्ण साबित हो सकते हैं। मौजूदा प्रयासों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जलवायु नीतियों के बीच सहचि यता, टिकाप्र विकास और पर्यावरणीय गुणवङ्खा में सुधार से ही कृषि क्षेत्र में ष ामन सम्भव है।[24]

अध्ययन से यह पता चला है कि ष ामन आधारित उपाय ही फसल को नुकसान से बचा सकते हैं और जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम कर सकते हैं। कृषि–परिस्थितिकी के तरीके र्मी ी में जैविक पदार्थ की मात्रा बढ़ाते हैं जिससे कार्बन पृथङ्खरण (carbon sequestration) होता है। यह तभी सम्भव है जब हम खाद और फसल अव ोष को र्मी ी में ही मिला दें, मिश्रित और दलहन जैसी खेती, फसलों के अवर्तन और न्यूनतम जुताई इत्यादि तरीकों का प्रयोग करें।[25] परिस्थितिकीय खेती से कार्बन डाइऑक्साइड, मिथेन, नाईट्रस

[23] *Intergovernmental Panel on Climate Change(IPCC) www.ipcc.ch*

[24] *https://www.ipcc.ch/publications_and_data/ar4/wg3/en/ch8.html*

[25] *For more information, please check http://kotschi.eu/en/agriculture-climate/*

ऑक्साइड में भारी कटौती होती है क्योंकि इसमें रसायनों का इस्तेमाल नहीं होता और फसलों के अवशेष को जलाया नहीं जाता है।

अनुकूलन उपायों को टिकाऊ खेती के स्थानीय तरीकों पर आधारित होना चाहिए। कृषि समाज के पूराने तरीकों से ही हम जलवायु परिवर्तन की अनिश्चितताओं से जूझने के उपाय ढूंढ़ सकते हैं।[26] इन स्थानीय उपायों में ज्यादा सम्भावनाएं हैं कि वे असानी से स्थानीय मिट्टी, पानी वर्षा और जीन कुण्ड (gene pool) के अनुरूप अपने आप को ढाल सकें।

किसी भी प्रकार का रासायनिक इस्तेमाल या हाईब्रिड अथवा जीनांतरित बीजों का जलवायु परिवर्तन को बढ़ाने में बड़ा योगदान है। इन से उत्सर्जन बढ़ता है और सूक्ष्म जीवों के मरने से मिट्टी की उर्वरता नष्ट हो जाती है। इस प्रकार ये जैव विविधता और पारिस्थितिक तंत्र को क्षति पहुंचाते हैं। दूसरी तरफ 'पारिस्थितिकी तंत्र आधारित अनुकूलन' (ecosysytem based adaptation) जैव विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र को एकीकृत कर ऐसी पद्धितियां तैयार करता है जिससे लोगों को जलवायु परिवर्तन के गम्भीर परिणामों से जूझने में मदद मिलती है। इसके साथ–साथ किसान संगठनों का मानना है कि छोटे किसानों को विविधता की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करना चाहिए। भूमि उपयोग में विविधता, बारह मासी फसल, मौसमी फसल, फल वृक्ष, चारा, टिम्बर (इमारती लकड़ी वाला वृक्ष) इत्यादि के मिश्रण से कई रास्ते खुल जाते हैं। इनसे जीविका और भोजन के साथ–साथ नकद और अन्य आवासीय जरूरतें भी पूरी हो सकती है। कृषि से पर्यावरण का उद्धार होना चाहिए न कि इसका उपभोग या इसे प्रदूषित किया जाना चाहिए।[27]

आइए देखते हैं कि किन कृषि पारिस्थितिकी पर आधारित अनुकूलन और शमन के उपायों की मदद से उत्पादन में बढ़ौत्तरी के साथ–साथ जलवायु परिवर्तन के गम्भीर परिणामों को भी कम किया जा सकता है।[28]

मृदा (मिट्टी)

पलवार (mulching) पद्धिति द्वारा हम नमी बचाकर मिट्टी में जैविक पदार्थ की मात्रा बढ़ा सकते हैं। वैज्ञानिकों का मानना है कि पलवार पद्धिति से हम मिट्टी के तापमान को 2 डिग्री सेल्सियस तक कम कर सकते हैं। मोटे अनाज और मिर्च जैसी फसलों में पानी की लागत को इसके द्वारा कम किया जा सकता है। मिट्टी में कटाव को रोकने के उपाय, जैसे नाली डाट (gully plug) बनाना, सीढ़ीदार खेती (terrace farming), बांध और परिरेखा खेती (contour cultivation) संरक्षण खेती (फसल अवशेषों को खेत में ही छोड़ देना) और झाड़ियों और पेड़ों को खेत के किनारे लगाना इत्यादि तरीकों के जरिए भी अनुकूलन किया जा सकता है। अनियमित और तेज वर्षा की वजह से जल संरक्षण और मिट्टी के कटाव (मृदा क्षरण) को रोकना काफी महत्वपूर्ण हो

---

[26] *National Conference on Ensuring Food Security in a Changing Climate, Gene Campaign and ActionAid, April 2010, New Delhi*

[27] *http://base.d-p-h.info/fr/fiches/dph/fiche-dph-8762.html*

[28] *For more information and copies in hindi and english, please check http://focusweb.org/content/handbook-agroecology-farmers-manual-sustainable-practices-0*

जाता है। मेड़ (bund) की मदद से हम पानी के बहाव को रोक सकते हैं जिससे पानी अच्छी तरह से मिट्टी में समा जाए और मिट्टी में ढेले न बने। इस प्रकार मुश्किल जलवायु स्थितियों में भी हम अपनी मिट्टी को बचा सकते हैं। अध्ययन से पता चला है कि इस विधि को अपना कर हम पहाड़ी और उबर–खाबड़ इलाकों में भी फसलों के उत्पादन को काफी बढ़ा सकते हैं। रासायनिक खाद के बिना भी हम कई तरीकों से मिट्टी की उर्वरता बढ़ा सकते हैं। केंचुआ खाद, रसोई के कचरे की खाद, मिश्रित फसलें और नाईट्रोजन योगिकीकरण (Nitrogen fixation) करने वाले पौधों के जरिए प्राकृतिक रूप से हम मिट्टी को पोषक तत्व प्रदान कर सकते हैं। प्राकृतिक रूप से उपलब्ध सामग्री और खेतों से निकलने वाले अवशेषों और कचरों का पुनः इस्तेमाल करके भी खेती की जा सकती है। इनकी मदद से हम महंगी रासायनिक खाद से छुटकारा पा सकते हैं। जीवाश्म ईंधन से बनी इस खाद का इस्तेमाल रोककर हम मिट्टी को भी नष्ट होने से बचा लेंगे। किसानों की आत्महत्या और कर्ज के पीछे इन्हीं महंगी और जानलेवा खाद और कीटनाशक का हाथ है। दूसरी तरफ जैविक खाद में प्रचुर मात्रा में नाईट्रोजन, फॉसफोरस और पोटैशियम पाया जाता है जो मिट्टी को न सिर्फ उपजाऊ बनाते हैं बल्कि उसे रोगाणुओं से भी मुक्त करते हैं।

गौरी मण्डल का गांव पश्चिम बंगाल के सुन्दरवन में स्थित है। इनके पास कुल 4 बीघा यानी 1.3 एकड़ भूमि का खेत है। ज्यादातर यह अपने परिवार के लिए ही धान और थोड़ी सब्जियां लगाती हैं। वर्ष 2008 में आए 'आइला' चक्रवात के कारण इनके खेत में नमकीन खारे पानी भर गया। इसके बाद वर्षा भी असमय और अनियमित रूप से हुई। इसके कारण इन्हें काफी नुकसान उठाना पड़ा।

पहले गौरी मण्डल रासायनिक खाद इस्तेमाल करती थीं। उन्होंने देखा कि इससे उनकी जमीन नष्ट होती जा रही है। इससे ज्यादा रासायनिक खाद डालना उनके लिए सम्भव नहीं था क्योंकि बार–बार इसे खरीदने के लिए उनके पास पैसे नहीं थे। इससे फायदा भी उतना नहीं हो रहा था। धीरे–धीरे उत्पादन भी कम होता जा रहा था। मिट्टी सख्त हो रही थी और उसमें दरारें पड़ने लगी थी।

वर्ष 2009 में इन्होंने केंचुआ खाद (vermicompost) के लिए एक गड्ढा तैयार किया। इसे धूप से बचाने के लिए प्लास्टिक पर से ढंका और किनारों को हवा के लिए खुला छोड़ दिया। मुट्ठी भर केंचुओं को मिट्टी में मिला कर इसमें छोड़ दिया। उन्होंने बताया कि हमेशा स्थानीय केंचुओं का ही इस्तेमाल करना चाहिए। उन्होंने पास की एक संस्था से एसीनिया फेटिडा (eisenia fetida) केंचुओं को खरीदा था। इन्हें 2 मीटर x 1 मीटर x 0.75 मीटर के हौज में रखा जिसे ईंट और गारा से बनाया गया था। सूखे पत्ते, ताजा गोबर और रसोई के अन्य जैविक कचरे इनमें डाले गए। गौरी के अनुसार नमी बनाए रखने के लिए समय–समय पर इसमें पानी का छिड़काव जरूरी है।

करीब 60 से 90 दिनों में यह खाद तैयार हो जाती है। हर 5–7 दिनों में इन्हें घुमाते रहना चाहिए। आज तक गौरी अपने खेतों में केंचुआ खाद का इस्तेमाल कर रही हैं। ष्ुारूआत के कुछ महीनों के अन्दर ही उन्हें फर्क नजर आने लगा था। इनके खेत की मिर्ीा नरम होने लगी। अब उन्हें खेती के लिए पहले से कम पानी की जरूरत पड़ती है। आज कल करीब साल भर से वे अपने खेत में मिश्रित खेती (mixed-cropping) और अन्तः फसल (inter-cropping) ्मुख्य फसल के बीच दूसरी फसल लगानाह की विधि इस्तेमाल कर रहीं हैं। अब वो ताजा रसायन–मुह्य सब्जियां खाती हैं और जो बच जाता है उसे स्थानीय बाजार में बेच देती हैं। घर में इस्तेमाल करने के बाद बचे हुए धान को भी वो बाजार में बेच देती हैं ्करीब 4 बोरियांह।

अब वो अपनी खेती में लगने वाले किसी भी सामान के लिए बाजार पर निर्भर नहीं हैं। वे अपने बीज खुद बचाती हैं। इनकी खेती स्थानीय जैव–विविधता पर आधारित है न कि किसी औद्योगिक उत्पाद पर।

पानी

वर्षा का जल संग्रहण (harvesting) और संचयन (storage) खेत के आस–पास गक्र या तालाब खोद कर किया जा सकता है। पारम्परिक वर्षा जल संग्रहण (rain water harvesting) के ढ़ांचे पूरे भारत में मौजूद हैं। पूरे खेत में हल की मदद से सकरी नाली/खाई (furrow bed) खोद कर उनके प्र पर फसल लगाई जा सकती है। पानी इन गक्रों में गिरने पर बहने के बजाए सीधा अन्दर समा जाएगा। पारम्परिक बूंद सिंचाई (drip irrigation) के उदाहरण दे ा भर में मौजूद है। पूर्वोह्रर राज्यों में बांस द्वारा और मध्य और पि चम भारत में घड़ों की मदद से की जाने वाली बूंद सिंचाई प्रचलित है। इन तरीकों से पानी बेकार खर्च न होकर सीधे जड़ों तक पहुंचता है। ये न सिर्फ ज्यादा कारगर हैं बल्कि इनका निर्माण और रखरखाव काफी आसान और सस्ता है।

वर्षा का जल सोखने और भू–जल स्तर को बढ़ाने में मददगार खाईयां/गक्रे

परिरेखा (contour) और मेढ़ (bund): परिरेखा और बांध की मदद से पानी बहने के बजाए मिर्ीा के अन्दर समा जाता है। इससे भू–जल में वृद्धि होती है। भारत में पहले से ही पानी की कमी है और यहां की खेती वर्षा पर आधारित है। ऐसे में ये तरीके काफी उपयोगी हैं। अनियमित वर्षा में भी ये काफी कारगर साबित होते हैं।

बाढ़ से बचाव : अत्यधिक वर्षा, समुद्री जल भराव और उमड़ती हुई नदियों से उत्पन्न बाढ़ की स्थितियों से

निपटने के लिए असम और पि चम बंगाल के किसान क्यारियों को प्र ंचा (raise farm beds) कर देते हैं। चेक डेम और तटबंध (dyke) की मदद से निचले इलाकों में पानी भरने से रोका जा सकता है। इनके अलावा तटीय क्षेत्र में मैनग्रोव की मदद से हम तट रेखा को ज्वारीय धारा की लहरों के असर से बचा सकते हैं।

पशु–पालन प्रबंधन

बेहतर चारा उत्पादन : दे ी घास और चारागाह को बदल–बदल कर इस्तेमाल करना चाहिए। प ुओं की पारम्परिक और स्थानीय नस्ल स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार अपने आप को आसानी से ढाल लेते हैं। इन्हें चारा और पानी भी कम लगता है और बदले में ये ज्यादा दूध देते हैं। इसलिए जलवायु परिवर्तन के संदर्भ में स्थानीय नस्लें काफी उपयोगी हैं।

दक्षिण भारत की स्थानीय नस्ल – 'हाल्लीकर', अपनी दौड़ने और भार वहन की क्षमता के कारण प्रसिद्ध

हाल के वर्षों में कृषि और प ुपालन के बीच के आपसी सम्बन्धों पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया जा रहा है। सरकार द्वारा संकर (hybrid) नस्लों को बढ़ावा देने के बाद से गोबर खाद की उपलब्धता और गुणवत्ता पर बुरा असर पड़ा है जिससे छोटे किसान खासतौर से प्रभावित हुए हैं। इनका प्रभाव खेती के तरीकों और फसल उत्पादन में भी देखने को मिलता है। पीढ़ी दर पीढ़ी चरवाहे ध्यानपूर्वक चयन करके प ुओं का प्रजनन करवाते आए हैं। कर्नाटक और भारतीय प्रायद्वीप की एक स्थानीय नस्ल है – 'हाल्लीकर'। इस नस्ल के प ु काफी लम्बे और मजबूत होते हैं। इनकी टांगे पतली और सुडौल होती हैं। इन्हें इनकी दौड़ने और भार वहन की क्षमता के कारण जाना जाता है। संकर नस्ल के मुकाबले ये कम चारा और पानी ग्रहण करते हैं। इस प्रकार की नस्लें छोटे किसानों के लिए काफी फायदेमंद हो सकती हैं।

बीज बैंक

परिवार और समाज के लिए बीज बैंक के अनेक फायदे हैं। बीज बैंक एक प्रकार से विविधिकरण का जरिया है जो किसानों को पर्यावरण और आर्थिक समस्याओं से लड़ने की ष ाक्ति प्रदान करता है। बीज बैंक के होने से किसानों के पास यह अवसर है कि वे अलग–अलग पर्यावरणीय स्थितियों में ढ़ले हुए बीजों का चयन कर सकते हैं या फिर उन्हें एक साथ भी लगा सकते हैं। बीज बैंक के होने से ग्रामीण–आदिवासी गांव में लोग एच.वाई.वी (High Yield Variety) य्यादा पैदावार वाली किस्मेंह और उसके लिए जरूरी और महंगी

खाद–कीटना ाक से आजाद हैं। किसानों द्वारा संचित बीज एच.वाई.वी की तुलना में स्थानीय परिवे ा के लिए ज्यादा अनुकूल, आर्थिक रूप से उपयोगी और पर्यावरण के लिए टिकाप्र किस्में हैं। इनमें विना ाकरी कीटों, रोग, सूखा और बाढ़ से निपटने की ज्यादा ताकत होती है।

बीज और अनाज बैंक, का ीपुर, रायगढ़ा
साभार : अग्रगामी, ओडि ा

सही प्रकार के बीज की उपलब्धता कृषि में काफी महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनके बिना पूरे ग्रामीण समाज का अस्तित्व ही खतरे में पड़ सकता है। बीज बचाने के तरीके उतने ही पुराने हैं जितनी की खेती। ज्यादातर छोटे किसान नियमपूर्वक अगले साल के लिए बीज बचाते हैं। एक समय में भारत में 2 लाख धान की किस्में थीं जो ष्ुाष्क भूमि (dry land), आर्द्र भूमि, या गहरे पानी तक के लिए अनुकूल थीं। इनकी क्षमताओं के कारण ये किस्में काफी लोकप्रिय थीं। ये न सिर्फ सूखा प्रतिरोधी थीं बल्कि ये काफी पौष्टिक और किसी भी तरह की मिप्री में उग जाती थीं।[29] संकर बीजों के आने के बाद से ये सारी किस्में धीरे–धीरे लुप्त होने लगीं। संकर बीजों को रासायनिक खाद, कीटना ाक, बहुतायत मात्रा में पानी की जरूरत पड़ती है जबकि दे ाी बीजों के लिए खेत या उसके आस–पास मौजूद सामग्री जैसे गोबर इत्यादि से ही काम चल जाता है। संकर बीजों में पड़ने वाले इन नुकसानदायक खाद/कीटना ाकों के इस्तेमाल को रोककर हम ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में भारी कटौती कर सकते हैं। जलवायु परिवर्तन हो या अनियमित वर्षा या फिर अत्यधिक तापमान – ये बीज हर प्रकार की परिस्थितियों का सामना और प्रतिरोध करने में सक्षम हैं। इस प्रकार दे ाी बीज किसानों के लिए काफी उपयोगी हैं।

बीज संरक्षण
साभार : अग्रगामी, ओडि ा

परम्परा के अनुसार बीज संरक्षण का काम महिलाओं का है। इनके पास बीजों के बारे में ज्ञान का अपार भण्डार है। महिलाएं ही तय करती हैं कि कौन–कौन से बीज को, कितना और कैसे संग्रह करना है।

समुदाय बीज बैंक में कभी–कभी आलू कंद, ष्ाकरकंद, जिमिकंद, रतालू, कसावा जैसे वानस्पतिक बीजों का भी संग्रहण किया जाता है। व्यक्तियों, परिवारों, और बीज बैंक के बीच

[29] *Centre for Interdisciplinary Studies वैज्ञानिक डॉ. देबल देब के साथ एक साक्षात्कार।*

विभिन्न प्रकार से लेन–देन या आदान प्रदान होता है। आमतौर पर बीज मेला, अनाज के बदले वस्तु (in-kind seed loan), वस्तु विनिमय, अदला–बदली, सामाजिक दायित्व के कारण देना इत्यादि जैसे अनौपचारिक तरीके प्रचलित हैं। कुछ बीज बैंक अनाज संग्रह का भी कार्य करते हैं। अत्यधिक नुकसान या भुखमरी जैसी आपातकालीन स्थितियों के समय इन बैंकों से अनाज प्राप्त किया जा सकता है।

फसल चयन और उगाने के तरीके

पारम्परिक धान और गेंहू की खेती से ज्यादा फायदा मोटे अनाज (millets) जैसी फसलों से होता है। इन फसलों को बाहर से बहुत कम लागत की जरूरत पड़ती है। इन्हें पानी भी कम लगता है और ये मिप्री के लिए भी फायदेमंद है। आंध्र प्रदे ा, ओडि ाा, राजस्थान, और कर्नाटक जैसे राज्य खाद्य सुरक्षा सुनि िचत करने के लिए मोटे अनाजों को प्रोत्साहित कर रहे हैं। फसलों का अवर्तन (crop rotation) ऱफसलों का बदल–बदल कर लगानाह्न मिश्रित एवं अन्तःफसल (inter-cropping) ऱमुख्य फसल के बीच में दूसरी फसल लगानाह्न देर से बुआई करना, स्थानीय एवं पारम्परिक बीजों का इस्तेमाल, श्रीधान विधि (SRI Method) ऱधान सघनीकरण पद्धतिह्न प्राकृतिक खेती, संरक्षित खेती, जैविक खेती, पारिस्थितिकीय खेती जैसे कई तरीकों से अनुकूलन और ष ामन दोनों में मदद मिलती है। इन तरीकों के इस्तेमाल से मिर्ी ी की क्षमता बढ़ जाती है जिससे ये आसानी से जलवायु की उतार–चढ़ाव को झेल लेते हैं। इन तरीकों से कीटों के प्रकोप को भी कम किया जा सकता है। खेत के अव ोशों को जलाने के बजाए उनका पुनः उपयोग कर जलवायु परिवर्तन के दबाव को कम किया जा सकता है।

श्रीधान विधि ऱधान सघनीकरण पद्धति३ (System of Rice Intensification: SRI)

चमरू राम की आयु 70 वर्ष है। ये हिमाचल प्रदे ा के कांगड़ा गांव में रहते हैं। इनके पास करीब 2 एकड़ ऱ20 करनाल; 1 करनाल ÷ 40 वर्ग मीटरह्न की जमीन है जिसमें करीब 90 किलो प्रति करनाल ऱ9 क्विंटल प्रति एकड़ह्न की दर से उत्पादन होता था। वर्ष 2006 में अपने खेत के एक हिस्से से ऱ0.05 एकड़ह्न इन्होंने श्रीधान

पौधों के बीच में पर्याप्त दूरी जिससे जड़ें ठीक ढ़ंग से फैल सकें

विधि की षुरूआत की। कुछ समय बाद इन्होंने इसे और बढ़ा दिया। अब वे 0.08 एकड़ में श्रीधान विधि से खेती करने लगे। इस विधि में उनकी इतनी रुचि इसलिए थी क्योंकि इसमें बहुत कम सिंचाई की जरूरत पड़ती है और इससे मिर्टी की उर्वरता भी बरकरार रहती है। श्रीधान विधि से इनका उत्पादन पहले से दुगना हो गया य8 क्विंटल प्रति एकड़ह।

श्रीधान विधि और पारम्परिक तरीके में फर्क

विवरण	**पारम्परिक तरीका**	**श्रीधान विधि**
नर्सरी	खेत में	नर्सरी उठाई हुई (raised)
खेत की तैयारी	नि ाान की जरूरत नहीं	चिफ्रक द्वारा
रोपाई	कोई तय दूरी नहीं	पौधे से पौधे और पंक्ति से पंक्ति की दूरी 10 इंच; 8 से 12 दिन की पौध का रोपन
निराई	हाथ से	वीडर मष ीन द्वारा
जल प्रबंधन	वर्षा आधारित या सिंचाई द्वारा पानी भरकर	केवल एक इंच पानी भरकर; मिर्टी को नम रखते हैं
खाद	यूरिया और खलीहानी खाद (farm yard manure)	प्राकृतिक रूप से तैयार पंचगव्यय, अमृतजल, मटका खाद, केंचुआ खाद

इस प्रयि या में चमरू को कम बीजों य्करीब 250 ग्राम प्रति करनालह्और कम पानी की जरूरत पड़ती है। हवा से भी फसल को कम नुकसान पहुंचता है। उन्होंने कहा कि पौध का रोपन ठीक 10 से 12 दिनों में ही किया जाना चाहिए। इसके साथ–साथ जैविक खाद की वजह से चावल का स्वाद पहले से बेहतर हो गया था। मिर्टी नरम हो गई थी और चारा ज्यादा हरे भरे हो रहे थे। अब वे श्रीधान विधि के कायल हैं और दूसरे किसानों को भी इसे अपनाने के लिए प्ररित कर रहे हैं।

कीट प्रबंधन

जैविक कीटना ाक और जैविक संवर्धक (bio-enhancer) की मदद से कृषि में जलवायु परिवर्तन के असर को बहुत तेजी से कम किया जा सकता है। इनमें जीवा म ईंधन का प्रयोग नहीं होता है और रासायनिक खाद के विपरीत इनसे खतरनाक ग्रीनहाउस गैस नहीं निकलती है। जैविक कीटना ाक को खेत के आस–पास मिलने वाली सामग्री जैसे नीम, गोबर, लाल मिर्च, अदरक, सरसों और पानी की मदद से बनाया जाता है। जैविक संवर्धक गोबर, गौमूत्र, गुड़, दही, दालें (legume), इत्यादि चीजों से बनता है। कीटों को रोकने के लिए फसल के आस–पास गेंदा जैसे पौधों को भी लगाया जा सकता है।

खाद्य सुरक्षा पर पड़ने वाले जलवायु परिवर्तन से निपटने का यह एक बेजोड़ तरीका है। किसानों को एक किचन गार्डन जरूर बनाना चाहिए जिसमें वे अपने लिए साग, सब्जियां, दालें, फल और अनाज लगा सकें। छोटे स्तर पर अगर हम बहुत सारी चीजें लगाएंगे तो उसमें खतरा कम हो जाता है। जलवायु के खतरों और नकदी फसल की कीमतों से बचने के लिए किसान परिवार किचन गार्डन की मदद से अपने लिए पर्याप्त भोजन उत्पादन कर सकते हैं। इस प्रकार उन्हें विषम परिस्थिति में भी भूखा नहीं रहना पड़ेगा।

कृषि–पारिस्थितिकी : जलवायु परिवर्तन संकट का एक टिकाऊ उपाय

आज हमारे सामने कई प्रकार की चुनौतियां मुंह बाए खड़ी हैं। ऊर्जा, खाद्य सुरक्षा, पर्यावरण, आर्थिक सुरक्षा, और जलवायु परिवर्तन इत्यादि। इन्हें अलग–अलग करके देखना गलत होगा। जलवायु परिवर्तन को ही ले लें। यह कोई सामान्य सी घटना नहीं है। इसे एक व्यापक स्तर पर उथल–पुथल के रूप में देखा जाना चाहिए[30] न कि साधारण ग्लोबल वार्मिंग के रूप में। जलवायु संकट से निपटने के उपाय जैव विविधता, पारिस्थितिकीय खेती, जैविक खेती जैसे तरीकों में है जिनसे न सिर्फ कम लागत में ज्यादा खाद्य उत्पादन हो सकता है बल्कि ये ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को भी रोकने में कामयाब हैं। इनकी मदद से किसान समाज आसानी से बदलते हुए जलवायु स्थितियों के अनुसार अपने आप को ढ़ाल सकते हैं।[31]

पारिस्थितिकीय खेती जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम कर देती है। इस प्रकार ये ज्यादा टिकाऊ है। जलवायु परिवर्तन के खिलाफ इसे एक ढ़ाल के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। इसमें कई प्रकार की कृषि पद्धतियां शामिल हैं जिन्हें पिछले दो दशकों से पारम्परिक खेती के रूप में आजमाया जा रहा है। इन पद्धतियों की मदद से हम प्राकृतिक रूप से स्वस्थ खाद्य उत्पादन कर सकते हैं। इनका उत्पादन विकेन्द्रीकृत, सामुदायिक स्तर पर, कम ऊर्जा खपत किये, टिकाऊ रूप से किया जा सकता है। पारिस्थितिकीय खेती में किसान पारिस्थितिकी के ज्ञान को अपना आधार मानते हैं। उत्पादन बढ़ाने, कीट नियंत्रण और मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के लिए इसमें रसायन और अनुवंशिक अभियांत्रिकी (Genetic Engineering) की मदद नहीं ली जाती है। इसमें कई प्रकार के फसलों को बदल–बदल कर लगाया जाता है ताकि वे कीट जो एक फसल की तरफ आकर्षित होते हैं अगली फसल चक्र में गायब हो जाएं। इन्हें मालूम है कि कीटों को पूरी तरह से नष्ट नहीं किया जा सकता। इससे कीटों के साथ–साथ प्राकृतिक परभक्षी भी खत्म हो जाएंगे जिनकी पारिस्थितिकी का संतुलन बनाए रखने में बड़ा योगदान है। रासायनिक खाद के बजाय किसान अपने खेत में गोबर खाद डालते हैं और फसल के अवशेषों को जलाने के बजाए दुबारा इस्तेमाल करते हैं। इस प्रकार खेत का सामान खेत में ही वापस चला जाता है और जैविक चक्र का संतुलन बना रहता है।

कृषि पारिस्थितिकी का प्रमुख सिद्धान्त है खेती का विविधिकरण। अन्तः फसल (inter-cropping) ﴾दो या उससे अधिक फसलों को आस–पास लगाना﴿ कृषि वानिकी ﴾फसल के साथ पेड़ों और झाड़ियों को लगाना﴿ जैव विविधता जैसी कई टिकाऊ पारिस्थितिकीय पद्धतियां प्रचलित हैं। इसमें देशी और स्थानीय पशुपालन को खेती के साथ जोड़ कर देखा जाता हैं और मिट्टी के अन्दर और जमीन के ऊपर के पारितंत्र को भी सशक्त करने पर जोर दिया जाता है। ये सारे तरीके श्रम प्रधान व समुदाय आधारित हैं और सामाजिक

[30] *http://base.d-p-h.info/fr/fiches/dph/fiche-dph-8762.html*

[31] *Ibid*

बाहिष्कार और दरिद्रता से निपटने में कारगर हैं। अन्य ष्ाब्दों में कृषि पारिस्थितिकी आर्थिक दृष्टि से व्यवहारिक, पर्यावरण के लिए हितकारी और समाजिक उद्धार करने वाला है।

कृषि पारिस्थितिकी का उपाय सर्वांगी (systemic) और सर्वोत्कृष्ट है। अगर रासायनिक और औद्योगिक खेती से हट कर कृषि पारिस्थितिकी, समुदाय आधारित और टिकाप्र खेती की तरफ बढ़ते हैं तो हम एक साथ तीन समस्याओं से निपट सकते हैं। इससे प्र र्जा पर निर्भरता काफी कम हो जाएगी य्क्योंकि हमें उत्पादन, परिवहन और खाद्य प्रसंस्करण में भारी मात्रा में जीवा म ईंधन की जरूरत नहीं पड़ेगी ह स्वास्थ्य और प्राकृतिक तरीके से उगाए गए खाद्य का जन स्वास्थ्य के प्र पर काफी सकारात्मक प्रभाव देखने को मिलेंगे क्योंकि बहुत सारी बिमारियां जैसे हृदय रोग, दौरा, मधुमेय इत्यादि हमारे खान–पान से जुड़े हुए हैं। और अंततः कृषि पारिस्थितिकी जलवायु परिवर्तन से भी लड़ने में कामयाब है क्योंकि यह वातावरण से कार्बन डायऑक्साइड को चूसकर जैविक सामग्री में कैद कर देती है।[32]

वि व भर में कई समुदाय, आंदोलन, और संगठन औद्योगिक खेती को पारिस्थितिकीय खेती में बदलने की मांग कर रहे हैं। यह न सिर्फ अत्यंत आव यक है बल्कि यह बिना किसी नई तकनीक या बड़ी लागत के हासिल किया जा सकता है और यह व्यवहारिक भी है। वि वभर में कई ऐसे उदाहरण हैं जो कि खासतौर पर छोटे किसानों के लिए आर्थिक पर्यावरणीय और सामाजिक के साथ–साथ लाभकारिता भी द र्ाते हैं। इससे पहले कि बहुत देर हो जाए इस बात की आव यकता है कि पारिस्थितिकीय खेती को स्थानीय, वै िवक, और राजनीतिक स्तर पर प्रोत्साहित किया जाए।

[32] *TJ., LaSalle and P., Hepperly, "Regenerative Organic Farming: A Solution to Global Warming," Rodale Institute Report, 2008.*

Shortage
Diseases
Biodiversity
Loss
Migration
Suicides
LowFarmer
Knowledge
Waves
Agroecology
Debts
Page
Word
Cloud
Pests
Increased
Dry
Sharing
Burst
Rainfall
Moneylenders
Unseasonal
Pattern
Snowfall
Fertilizers
Hailstorms
Food
Temperatures
Cattle
Water
Floods
Seed
Mitigation
Farming-Water
Productivity
Spells
Biodiversity
Vermicompost
Ecological
Degraded
Harvesting
Loans
Drought
Banks
use
and
Climate
Sowing
Erratic
Heat
Sovereignty
Practices
Seeds
Reduction
Local
Soil
Rising
Changes
Farming
Pesticides
Adaptation

फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ

फोकस ऑन द ग्लोबल साउथ, एशिया (थाईलैंड, फिलीपीन्स एवं भारत) में स्थित एक नीति शोध संगठन है। फोकस भारत एवं विश्व के दक्षिण भाग (यानी विकासशील देशों) में वैश्वीकरण की राजनीतिक अर्थव्यवस्था और इस प्रक्रिया में अंतर्निहित प्रमुख संस्थाओं के बारे में शोध तथा विश्लेषण प्रदान कर सामाजिक आंदोलनों एवं समुदायों की सहायता करता है। फोकस के लक्ष्य दमनकारी आर्थिक एवं राजनीतिक संरचनाओं की समाप्ति, स्वतंत्र संरचनाओं तथा संस्थाओं का निर्माण, विसैन्यीकरण और शांति को बढ़ावा देना है।

रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफतुंग (आर.एल.एस.)

रोज़ा लक्जमबर्ग स्टिफटुंग (आर.एल.एस.) जर्मनी में स्थित एक फाउंडेशन है, जो दक्षिण एशिया की तरह ही विश्व के अन्य भागों में महत्वपूर्ण सामाजिक विश्लेषण और नागरिक शिक्षा के विषयों पर कार्य कर रहा है। यह एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष एवं लोकतांत्रिक सामाजिक व्यवस्था को बढ़ावा देता है। इसका उद्देश्य समाज एवं नीति निर्धारकों के सामने वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करना है। यह शोध संगठनों, स्व–मुक्ति के लिए संघर्ष करने वाले समूहों और सामाजिक कार्यकर्ताओं को उन मॉडल्स के विकास में उनकी पहलों में मदद देता है, जिनमें अत्यधिक सामाजिक एवं आर्थिक न्याय देने की क्षमता है।